विपाशा

हिमाचल प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग की द्वैमासिक पत्रिका

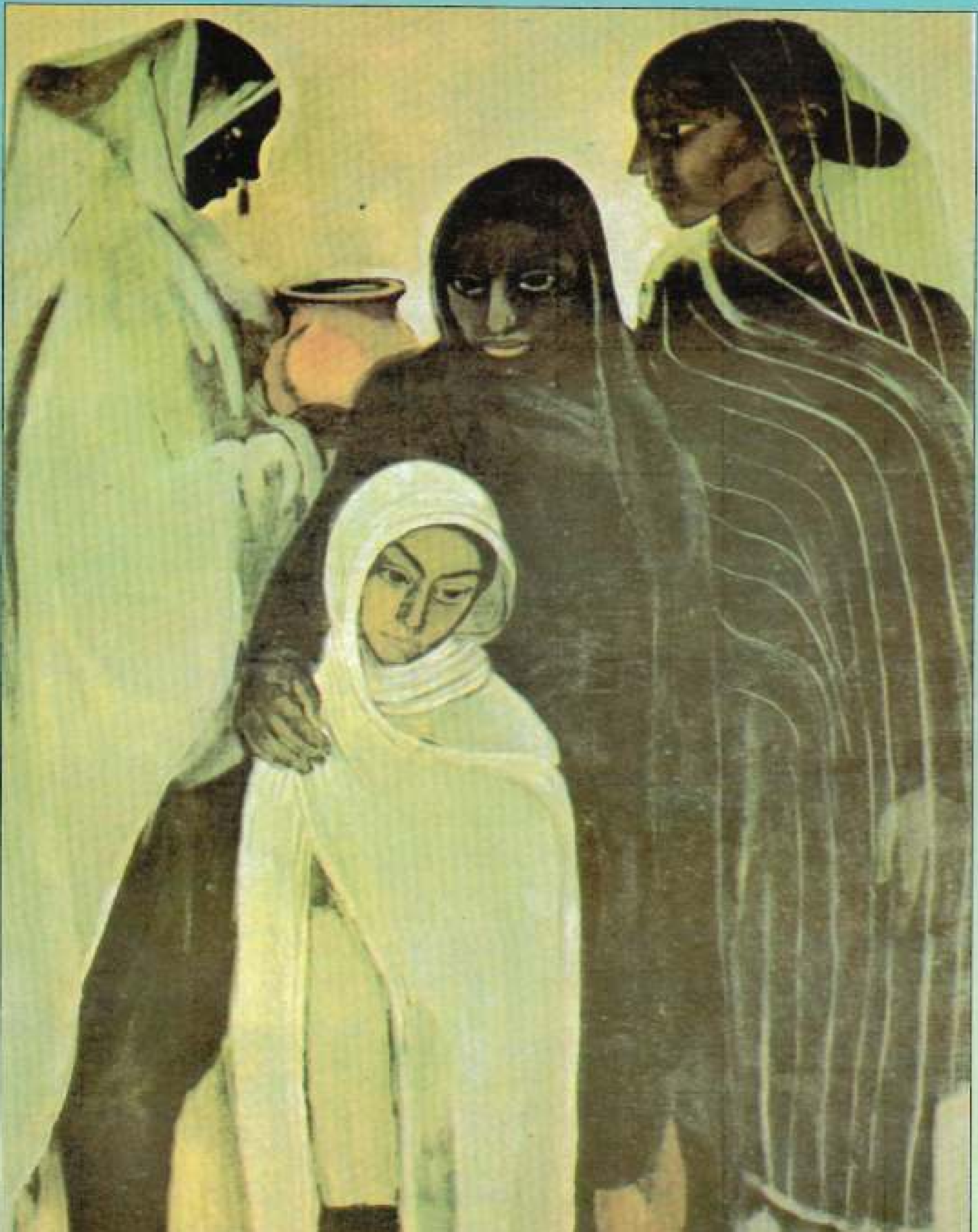

हिमाचल की हिन्दी कविता

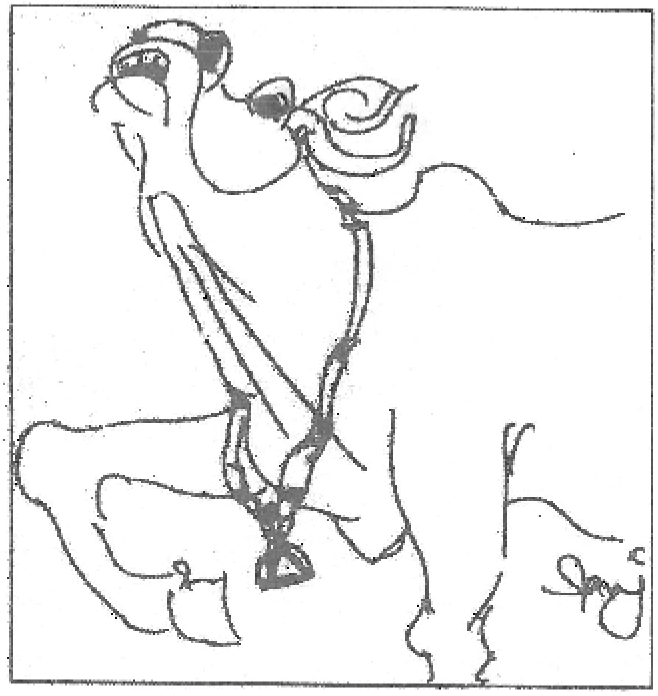

हिमाचल की हिन्दी कविता विशेषांक

विपाशा

साहित्य, संस्कृति एवं कला की द्वैमासिकी

वर्ष 38, अंक 214-215, अप्रैल-अगस्त, 2022

मुख्य संपादक
डॉ. पंकज ललित
निदेशक, भाषा एवं संस्कृति, हि.प्र.

उपसंपादक
अजय शर्मा

अतिथि संपादक
अजेय

सम्पर्क : संपादक-विपाशा, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि.प्र.
39-एस.डी.ए., शिमला-171009,
दूरभाष : 0177-2626614-15-16, फैक्स : 2628789
सदस्यता शुल्क बैंक के खाते में जमा करवाकर उसका विवरण और अपना पूरा पता
e-mail : vipashapatrika@gmail.com पर भेजें।
बैंक खाता संख्या : 41050647574 1, IFSC : SBIN0014639
खाता धारक : निदेशक, भाषा एवं संस्कृति
त्रैवार्षिक शुल्क : 150 रुपये, वार्षिक : 60 रुपये, यह अंक : 30 रुपये

क्रम

संपादकीय / 3

कविताएँ : सुरेश सेन निशांत /5, विक्रम मुसाफिर /8, प्रदीप सैनी /9, आत्मा रंजन /11, पवन ठाकुर /14, शुभम नेगी /16, अनंत आलोक /19, विजय विशाल /21

रेखा /24, सरोज परमार /25, चंद्ररेखा ढडवाल /28, ईशिता आर. गिरीश /30, रेखा गक्खड़ /32, इंदु नवनीत भारद्वाज /34, श्रीया /37, ईना कंवर /39

लेख : हिमाचल की हिन्दी कविता : एक परिदृश्य / विजय विशाल /42

कविताएँ : ज. स्वामीनाथन /53, वरयाम सिंह /55, कुमार कृष्ण /58, श्रीनिवास श्रीकांत /61, अनिल राकेशी /63, मधुकर भारती /65, पद्मगुप्त अमिताभ /69, अश्विनी रमेश /72

तुलसी रमण /73, अनूप सेठी /76, यादवेंद्र शर्मा /79, दीनू कश्यप /81, कुलदीप शर्मा /85, मोहन साहिल /89, अजेय /91, अशोक कुमार /95

परिचर्चा :

निरंतरता और विपुलता का अभाव / पद्म गुप्त अमिताभ/97

हिमाचल के कवि अभी पहाड़ लांघ कर बाहर नहीं निकले थे / रेखा /101

अच्छे आलोचकों का अभाव / केशव /104

छोटे आकाश की कविता का संघर्ष /तुलसी रमण /105

कविताएँ : सुंदर लोहिया /113, चतुर सिंह /116, प्रकाश पंत /118, ज़िया सिद्दिकी /120, केशव /123, के.के. वैद्य /125, एस. अतुल अंशुमाली /127, अनिल महंत/128

नवनीत शर्मा /129, ओम भारद्वाज /132, निरंजन देव शर्मा /134, अरुणजीत ठाकुर /136, गणेश गनी /139, मनोज चौहान /142, सुरिन्द्र सिंह 'यूसुफ' /146, राजू मस्ताना/148

परिचर्चा : हिमाचल प्रदेश हिन्दी कविता के क्षेत्र में पिछड़ गया-सा क्यों दिखता है?/149

कविताएँ : अवतार एनगिल /167, कुल राजीव पंत /170, सुदर्शन वशिष्ठ /172, के.आर. भारती /177, प्रफुल्ल कुमार /180, सत्यनारायण स्नेही /182, अरविंद रंचन /184, संगीता कौंडल /185

स्नेह लता नेगी /186, इशान मार्वल /188, दिनेश शर्मा /190, विवेक भारद्वाज /194, शेर सिंह मेरूपा /196, मुकेश कुमार /198, कमल चंद /200, बबलू ठाकुर/201

रेखांकन - संजीव कुमार मेहता

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, इनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं। -संपादक

संपादकीय

'भाषा एवं संस्कृति विभाग विपाशा पत्रिका का 'हिमाचल की हिन्दी कविता' विशेषांक निकालना चाह रहा है, इस अनिवार्य शर्त के साथ कि कविताएँ हिमाचल में रह चुके या हिमाचल में रह रहे कवियों की ही हों।' बतौर अतिथि सम्पादक इस कार्य का उत्तरदायित्व निभाने हेतु इस आशय का आदेश जब मुझे मिला तो इस कठिन कार्य को मैंने चुनौती की तरह स्वीकार किया। विभाग का विचार यह था कि हिमाचल प्रदेश के गठन के पचास वर्षों (1971-2021) को समेटते हुए दिवंगत, वरिष्ठ एवं युवतम सभी कवियों का एक संग्रहणीय संकलन तैयार हो। यह भी था कि इस में प्रकाशित व अप्रकाशित सभी तरह की कविताएँ सम्मिलित की जाएँगी।

मेरे सम्पादक के सामने यह सवाल मुँह बाए खड़ा था कि विगत आधी सदी में एक प्रशासनिक इकाई होने के अलावा हिमाचल बतौर एक 'भू-सांस्कृतिक इयत्ता' भी विकसित हो पाया है क्या?... कि वहाँ से हम एक ख़ास तरह की सृजनात्मकता की अपेक्षा कर सकें? कुछ वरिष्ठ लेखक मित्रों का मानना तो यहाँ तक था कि साहित्य के ऐसे वर्गीकरण ही गैरज़रूरी व गैरवाजिब हैं।

लेकिन चूँकि विभाग ऐसा चाह रहा था कि इन पचास वर्षों में हिमाचल की कविता में क्या कुछ महत्त्वपूर्ण घटा; यह जानने के लिए विपाशा के पुराने अंक खंगाले गए। महत्त्वपूर्ण तो काफी कुछ मिला, लेकिन सब से सशक्त स्वर यहाँ की गाढ़ी स्त्रीवाची चेतना का मिला। यहाँ पहाड़ी अस्मिता का स्वर भी है लेकिन अति 'नोस्टेल्जिया' और भावातिरेक ने उस आवाज़ की ताकत छीनी है। हिन्दी साहित्य की मुख्य धारा में पिछली सदी के छठे दशक से लेकर इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक तक व्याप्त डायनेमिक प्रगतिशील प्रवृत्ति की गूँज यहाँ भरपूर सुनाई देती है। इसके अतिरिक्त सातवें दशक से नए-नए पनप रहे कस्बाई या शहरी मध्यवर्ग की जटिल व गहन मनोदशाओं का एक ट्रेंड भी दिखता है। मधुकर भारती, सुन्दर लोहिया, कुमार कृष्ण, श्रीनिवास श्रीकांत, अमिताभ, अनिल राकेशी की जटिल भावबोध की कविताई तथा अश्विनी रमेश और उनके बाद की महत्त्वपूर्ण लम्बी कविताओं की पूरी पीढ़ी पर एक स्वतंत्र संकलन की संभावना है। मौका मिला तो भविष्य में इस पर व्यक्तिगत रूप से काम करूँगा। फिलहाल यह अंक हिमालय के इस 'क्लोज़्ड पॉकेट' के स्त्रीवाची स्वर, और पहाड़ की 'ईको फेमिनिस्ट' अस्मिता को समर्पित है, जो कि मुख्यतः ग्राम्य चेतना से सीझी हुई है।

दूसरे, यहाँ की हिन्दी कविता के विकास में यहाँ के लोक का भाषिक वैविध्य भी एक बड़े व्यवधान की तरह दिखा मुझे। क्योंकि हिन्दी यहाँ की मातृभाषा न होने के बावजूद यहाँ आज की तारीख में अधिकतर लेखन कार्य हिन्दी में ही होता है। सातवें दशक में जगदीश स्वामीनाथन् ने अपनी काव्य भाषा में पहाड़ी टोन को जिस खूबसूरती से पकड़ा है, ऐसा भाषिक

प्रयोग आज तक किसी हिमाचली कवि ने नहीं किया। बरसों बाद अंग्रेज़ी पृष्ठभूमि से आए युवतम कवि इशान मार्वल उस स्वर को पकड़ने की भरपूर कोशिश कर रहे हैं। दोनों के कथ्य में 'आईडेंटिटी' विषयक दृष्टियाँ भी काबिलेगौर हैं। इसलिए उन दोनों की कविताएँ इस अंक में जा रही हैं।

आधुनिक अस्मितावादी विमर्शों की खासी सुस्पष्ट आवाजें युवतम लोगों की रचनाओं में सुनाई पड़ती हैं। सिरमौर की श्रीया और बिलासपुर के शुभम नेगी की रचनाएँ अधुनातन 'क्वीयर चेतना' के लिहाज़ से भी द्रष्टव्य हैं। किन्नौर से महत्त्वपूर्ण युवा कवि स्नेह लता नेगी की उपस्थिति भी विपाशा में संभवतः प्रथम किन्नौरी कवि की तरह दर्ज हो रही है।

हिमाचल के कवियों की सूची जब बनकर तैयार हुई तो यह लगभग 200 की संख्या तक पहुँच गयी। दो कविताएँ प्रत्येक कवि की छापी जाएँ तो यह कम से कम छह सौ पृष्ठों का वृहद् ग्रन्थ बन जाता। अतः तय किया गया कि कवियों की संख्या 60 पर सीमित की जाए ताकि कविताओं के अतिरिक्त कविता पर आलेख, कवियों के साक्षात्कार, कुछ परिचर्चाएँ व बहस आदि को भी जगह दी जा सके और अंक लगभग 200 पृष्ठों में समेट लिया जा सके और अंक भी महज़ संकलन न होकर एक मुकम्मल आकलन करता हुआ दस्तावेज़ बने। दो सौ में से साठ महत्त्वपूर्ण कवियों का चुनाव करना दुष्कर कार्य था, क्योंकि हर कवि ने अपने जीवन में एकाध महत्त्वपूर्ण कविता लिखी ही होती है। बहरहाल बहुत क्रूर होकर हमने यह छंटनी की। बेहद दुःखी मन से मुझे अपने कुछ अन्तरंग व आत्मीय मित्रों की कविताएँ अंक से बाहर रखनी पड़ीं। इन तमाम धर्म संकटों के बावजूद जो कुछ भी बन पड़ा है, उसे सुधी पाठकों को सौंपते हुए तसल्ली हो रही है।

उन सभी रचनाकार साथियों का बहुत-बहुत आभार कि हर प्रकार की सामग्री तथा सूचनाएँ एकत्रित करने में मेरी सहायता की।

यह महत्त्वपूर्ण काम सचिव, भाषा एवं संस्कृति विभाग राकेश कंवर के सतत समर्थ दिशा-निर्देश, महत्त्वपूर्ण सुझावों एवं निदेशक डॉ. पंकज ललित के आत्मीय सहयोग के बिना संभव नहीं था। अंत में, मैं इन दोनों उच्च अधिकारियों तथा विभाग के सम्पूर्ण स्टाफ का हार्दिक आभार प्रकट करना चाहूँगा; विशेष रूप से उप सम्पादक अजय शर्मा का जिन्होंने छुट्टियों वाले दिन भी कार्यालय आकर सम्पादन आदि तकनीकी कामों में तहे दिल से मेरी मदद की। अजय जी के काम करने का तरीका, उनका 'आर्काईविंग', 'रिकॉर्ड कीपिंग' का सलीका, सचमुच में अत्यंत प्रोफेशनल, दक्षतापूर्ण एवं श्लाघनीय है।

—अजेय

नोट : रचना के अंत में रचनाकाल अथवा प्रकाशनकाल तथा साथ में व्यक्ति के पैतृक गाँव/शहर का नाम एवं जन्म वर्ष का उल्लेख भी कर दिया गया है। ये सूचनाएँ उपलब्धता के अनुसार दी गई हैं।

दो कविताएँ

□ सुरेश सेन निशांत

इस वृक्ष के पास

चुपचाप गुज़रो
इस वृक्ष के पास से
प्रार्थना में रत है यहाँ एक औरत
उसे विश्वास है
इस वृक्ष में बसते हैं देवता
और वे सुन रहे हैं उसकी आवाज़।

एक औरत और ईश्वर
रत हैं बातचीत में
चुपचाप गुज़रो
इस वृक्ष के पास से
ऐसा कौतुक
एक औरत ही रच सकती है
जो ईश्वर को स्वर्ग से उतार कर
एक वृक्ष की आत्मा में बसा दे।

चिड़ियों की चहचहाहट
हवाओं की सरसराहट
कुछ भी नहीं सुनाई दे रहा है उसे
सिवाय अपने हृदय की धड़कनों के
सिवाय अपनी प्रार्थना के।

वृक्ष के हरे पत्ते
तालियों की तरह बजते हुए
दे रहे हैं उसे आश्वासन
कि उठो माँ

सुन ली है ईश्वर ने तुम्हारी प्रार्थना।

मन्दिर और मस्जिद से दूर
उनकी घंटियों और अज़ानों
से बहुत दूर
प्रार्थना में रत है एक औरत

चुपचाप गुज़रो
इस वृक्ष के पास से
2010

पहुँचना

मैं चाहता हूँ पहुँचना
तुम्हारे पास
जैसे दिन भर काम पे गई
थकी माँ पहुँचती है
अपने नन्हें बच्चे के पास

सबसे कीमती पल होते हैं
इस धरती के वे
उसी तरह के
किसी कीमती पल-सा
पहुँचना चाहता हूँ तुम्हारे पास

मैं चाहता हूँ पहुँचना
तुम्हारे पास
जैसे बरसों बंजर पड़ी
धरती के पास पहुँचते हैं
हलवाहे के पाँव
बैलों के खुर
और पोटली में रखे बीज
धरती की खुशियों में उतरते हुए
मैं पहुँचना चाहता हूँ तुम्हारे पास।

मैं चाहता हूँ
बारिश के इस जल-सा

धरती की नसों में चलते-चलते
पेड़ों की हरी पत्तियों तक पहुँचूँ
फलों की मुस्कुराहट में उतरूँ
उनकी मिठास बन
तुम्हारे ओंठों तक पहुँचना चाहता हूँ

अँधेरे घर में
ढिबरी में पड़े तेल-सा
जलते हुए
तुम्हारे साथ-साथ
अंधेरे से उजाले तक का
सफर तय करना चाहता हूँ।

निराशा भरे इस समय में
मैं तुम्हारे पास
संतों के प्रवचनों-सा नहीं
विज्ञापनों में फैली
व्यापारियों की चिकनी भाषा-सा नहीं
मैं कविता की गोद में बैठी
किसी सरल आत्मीय पंक्ति-सा
पहुँचना चाहता हूँ

मैं चाहता हूँ
मैं पहुँचूँ तुम्हारे पास
जैसे कर्ज़े में फंसे
बूढ़े किसान पिता के पास
दूर कमाने गए
बेटे का मनीऑर्डर पहुँचता है

आँखों में खुशी के आँसू छलकता
एक उम्मीद-सा
मैं पहुँचना चाहता हूँ
तुम्हारे पास
तुम्हारे हाथों में
तुम्हारी आँखों में

2010

जन्म 1959, देहांत 2018, पैतृक गाँव सलाह, सुन्दरनगर, मण्डी, हि.प्र.

तीन कविताएँ

❑ विक्रम मुसाफिर

रोज़मर्रा-सा कुछ

मैं तुम्हें छूना चाहता हूँ
जैसे आकाश धरती को छूता है
जैसे कविता शब्दों को
जैसे धूप खिड़की को
जैसे घास हवा को
जैसे केतली की भाप छूती है तुम्हें
मैं तुम्हें छूना चाहता हूँ
उसी तरह चुपचाप

तुम्हें काम करते देख
मैं तुम्हारा सबसे ज़रूरी काम
होना चाहता हूँ।

जवाब

कहाँ तक पढ़े हो
पूछा तो
ढाबे पर काम करता
बच्चा बोला
बहुत ज़्यादा
पहाड़ी नदी किनारे था स्कूल
मास्टर साहिब को
रोज़ पकड़कर मछलियाँ देता था
वो मुझे छुट्टियाँ

उस नदी में आज भी
मेरी छुट्टियाँ तैरती हैं।

गणना

गिनती के ही बचे
बाघ / कवि
विनती के तो बहुतेरे हैं।

2015

जन्म 1981, ठियोग, ज़िला शिमला, हि.प्र.
[गाँव व डाक. सरीवन, तह. ठियोग, ज़िला शिमला, हि.प्र.]
मो. 94189 12308

दो कविताएँ

□ प्रदीप सैनी

दु:ख का एक ताप होगा उनके भीतर

उनके पैरों में बेड़ियाँ डालीं हमने
और रास्तों में दीवारें खड़ी कीं
उन्हें सदा के लिए रोकना हमारे लिए आसान नहीं था
तो कहने को नए रास्ते दिए उन्हें
जो दरअसल अंतहीन अँधेरी सुरंगें थीं

हमारी नज़र उनके चमकते हुए नीले पर रही
जिससे हमारा पीलापन हरा हो सके
इस तरह उनके नीले से अपने पीले को हरा किया हमने

उनकी गति से चमक चुराकर हमने
अपनी दुनिया को रोशन किया

उनके किनारे जन्मी हमारी सभ्यताएँ
जिन सभ्यताओं ने उन्हें किनारे पर ही रखा

देवी कहा उन्हें हमने
और अपनी सभ्यता से निकलता गन्दा नाला
उनके भीतर छोड़ दिया

उनमें एक डुबकी लगाने का पुण्य लूटा
और अपने पापों से उनके घाट रंग दिए
जिसे वे ढोती रहीं उम्र-भर भीतर लिए-लिए

कितनी जगहों से होकर गुज़रीं वे

कोई जगह मगर उनकी न हुई
दुःख का एक ताप होगा उनके भीतर
वे अपने ही पानी से सूखती चली गईं
हमें अब याद नहीं पड़ता वे नदियाँ थीं या औरतें।
2020

सिलवटें

माँ
जब भी तह लगाती हो तुम कपड़े
पापा की कमीज़ आते ही हाथ कस आते हैं तुम्हारे
ज़ोर से चलाती हो हाथ पूरी कमीज़ पर
बार-बार
तब भी जब वहाँ कुछ नहीं होता
जाने वहाँ ढूँढती हो क्या?

फिर आदत से मजबूर
रख देती हो कमीज़
अपने कपड़ों से थोड़ा दूर।
1998

जन्म 1977, पैतृक गाँव कोलर, जिला सिरमौर, हि.प्र.
[गाँव व डाक, कोलर, तह. पांवटा साहिब, जिला सिरमौर, हि.प्र.-173001]

दो कविताएँ

❑ आत्मा रंजन

नहाते बच्चे

सिर्फ माँ ही
नहला सकती है बच्चों को
इस तरह

या फिर धूल
या धूप!
1994

बहुत सुन्दर

बहुत सुन्दर एक औरत ने
बहुत सुन्दर दूसरी बच्ची को
दिया है जन्म
और हो गई है बहुत उदास
गहन उदासी में डूबा
बहुत सुन्दर इस पृथ्वी को अब
कैसे कहूँ मैं बहुत सुन्दर!
2019

स्मार्ट लोग

मशहूर रेस्तरां की बड़ी सी मेज़ के गिर्द
जमा हुआ है स्मार्ट युवक-युवतियों का टोला
शीतल पेय की चुस्कियों
सिगरेट के छल्लों के बीच
खिलखिलाते बतिया रहे हैं मस्ती में

भरपूर ऊर्जा से भरी
स्मार्ट लोगों की दुनिया है यह
स्मार्ट हैं उनकी पोशाकें और जूते
मशहूर ब्रांड की पतलूनें, टाइयाँ, सूट, चश्मे
करीने से प्रेस की हुई झक सफेद कमीज़ें
जिन्हें निखारने के लिए
टी.वी. पर मशहूर हस्तियाँ बेच रही हैं पाउडर
पाउडर ही क्यों और भी बहुत कुछ
बहुत कुछ से भरी पड़ी हैं उनकी अलमारियाँ
और आदमकद शीशे की दराज़ों में
आकर्षक पैक और छोटी-बड़ी शीशियों में
मौजूद है हर मर्ज़ की दवा
स्मार्ट हैं उनके चेहरे
आँखें, दाँत, बाल, नाखून
धूल और पसीने के लिए है उनके पास
अदा से नाक सिकोड़ती घिन्न

वे हँसते हैं खाँसते हैं सलीके से
फूहड़ नहीं स्मार्ट है उनकी हंसी
और खाँसी-खंखार भी
उनके लकदक ड्राइंग रूम की
स्मार्ट व्यवस्था से आक्रान्त
कहीं दबता-सा जा रहा घर
किताबें नहीं हैं कहीं भी, न लाइब्रेरी
अलबत्ता चंद पत्रिकाएँ हैं स्मार्ट मुखपृष्ठों वाली

एक से बढ़कर एक
स्मार्ट हैं उनके सेलफोन
स्मार्ट पर्स में सलीके से रखे हैं
स्मार्ट कार्ड, क्रेडिट कार्ड, गिफ्ट कार्ड
एक दूसरों को नीचा दिखाने के
उनके पास हैं स्मार्ट तरीके
छोटी-छोटी साजिशों में उलझे
बड़ी साजिशों से बेखबर हैं स्मार्ट लोग
उनके लिए अमर्त्य सेन है
जनरल नॉलेज का एक प्रश्न
वे अनवरत घंटों बतिया सकते हैं

मशहूर कंपनी की बाइक
और कार के नए मॉडलों पर
स्मार्ट हैं उनके सपने

स्मार्ट लोग
स्मार्ट कंपनियों में करते हैं स्मार्ट जॉब
और कमाते हैं स्मार्ट मनी !

2010

जन्म 1971, पैतृक गाँव हरीचोटी चनारड़ी, धामी, जिला शिमला, हि.प्र.

[आशीर्वाद कॉटेज, न्यू टुटू, शिमला, हि.प्र.-171001]

मो. 94184 50763

पाँच कविताएँ

❑ पवन ठाकुर

मंथन

(अलीरेज़ा के चित्र को देखकर)
चलो दुनिया को एक दूसरी नज़र से देखते हैं
मैं तुमसे कह रहा हूँ मेरी जान
एक विशाल समुद्र है
और मैं, तुम एक नाव पर सवार
जहाँ दिन भी है, रात भी
और दूर दूर तक कोई किनारा नहीं
हम झेलेंगे इसके थपेड़े
आँखों को चुभती इसकी चमक
एक रोशनी है हमारे दरमियां
जिसके सहारे हम तैरेंगे ये समुद्र
तुम्हारा और मेरा प्यार

बात

ये क्या बात हुई
कि
बिन मतलब के कोई बात न हुई
ये क्या हुआ
कि
नहीं कहा गया
जो कहा जाना था
नहीं हुआ
जो होना था

काश

मेरे उड़ जाने भर से
खिल जाता फूल
काश
मैं एक तितली होता

पीला

शहर की भागमभाग
के बीच
भीड़ में से निकलती
तुम
जिसे मैंने देखा
किसी चंद्रमा-सी चमकती हुई
सितारों के बीच
मुझे लगता है
इश्क़ का रंग पीला है

बहुत कुछ

बहुत कुछ है
जो छूट जाता है लिखने में
शायद कभी न लिख पाऊँ जो है
पर लिखता रहूँगा
कुछ मेरी क़लम कहेगी
कुछ मेरी आँखें कहेंगी
तुम पढ़ना
2022

जन्म 1996, पैतृक गाँव गोशाल, जिला कुल्लू, हि.प्र.

[गाँव गोशाल, डाक. बाहंग, तह. मनाली, जिला कुल्लू, हि.प्र.-175103]

मो. 70181 05163

दो कविताएँ

❑ शुभम नेगी

हत्याओं की रपट

वे लड़के
जो लड़कों के हाथ थामना चाहते थे
जो लड़कों की पलकों को चुम्बन से
सौंपना चाहते थे सदाबहार सपने

वे लड़के जिनके प्रेम ने बोयी
संकरी सलाखों की विषैली फसल
वे लड़के जो किताबी प्रेम-कहानियों में ढूँढते फिरे
उनके लिए आरक्षित कोना
वे लड़के जिनके लिए कोई कोना नहीं था

वे लड़के
जो पकड़े गए बिस्तर पर लड़के के साथ
वे लड़के जिनकी पिंडलियों पर नील हैं
वे लड़के जो मुँह में जुराबें ठूँस चीखे हैं
वे लड़के जिनसे कहा गया—बेटा समझो
वे लड़के जिन्हें समझा नहीं गया

वे लड़के
जो लड़के थे
पर लड़के नहीं थे

वे लड़के
जो आदमी बने, मर्द नहीं
वे आदमी

जिनकी पलकों की अंदरूनी सतह फफूँद है
वे आदमी जो बीवियों के नाम
धोखे लिखने पर मजबूर हैं
वे आदमी जिनका परिवार
उनकी देह के अभिनय का पुरस्कार है

वे आदमी जिनके मुँह, कान, आँख, नाक नहीं हैं
वे आदमी जिनकी शक्लों पर डाका पड़ा है
वे आदमी जिनकी मुस्कुराहटें शोक गीत हैं
वे आदमी जिनके मुँह में जुराबें ठुंसी हैं
वे आदमी जिनके कमरों को
मुँह-ज़बानी याद हैं सुसाइड लेटर

शायद दिखें तुम्हें अब साक्षात्
तुम्हारी गलियों, दुकानों, घरों, दफ्तरों,
पूजाघरों में वे आदमी
जब पाएँगे अपनी शक्लें वे आदमी
तो हत्याओं की रपट होगा साहित्य
इंसान के सबसे भद्दे अपराध का ब्यौरा
और गोष्ठियाँ क्या होंगी
साक्षात्कार, शोकसभाएँ या कटघरे?
2021

बीड़

पेड़ यहाँ के मूल निवासी हैं
पेड़ों द्वारा लगायी क्यारियों में
उगे हैं यहाँ इक्के-दुक्के इंसान

पहाड़ हैं पार्क में लगे स्लाईड
जिनकी सतह पर फिसलते आते हैं
बादलों के बच्चे बारहा
पत्थरों पर पानी के गिरने से
उपजी धुन
फूलों के नृत्य का पार्श्वसंगीत है

यहाँ उदास आँखों को

घेर लेती हैं तितलियाँ
बुद्धिस्ट झंडों से झरते पाँच रंग
चलते होंठों पर उँगली रख देते हैं

दूर खेत में साईकिल दौड़ाती बच्ची
टायरों से कातती चलती है
सूरज की आती किरणों को

एक उत्कृष्ट प्रकाश डिज़ाइन में
चमक उठते हैं कुछ कोने
पहाड़ी मंच के
कुछ बुझ जाते हैं दृश्य-परिवर्तन तक

घाटी में मंचित इस संगीत-नाटक के
तमाशबीन हैं यहाँ
पहाड़ की पीठ पर लदे पहाड़
2021

जन्म 1997, पैतृक गाँव समोह झंडूता, जिला बिलासपुर, हि.प्र.

[गाँव समोह झंडूता, जिला बिलासपुर, हि.प्र.]

मो. 99844 67966

1

दो कविताएँ

❑ अनंत आलोक

घास काटना

पहाड़ के काँधे चढ़ी औरतें
कर रही हैं हजामत
बूढ़े पहाड़ की
कनपटी और सिर के पिछले हिस्से में
बचे खुचे, पके, भुरियाये बाल
कतर देती हैं हर वर्ष
जाड़ा आने से पहले
ये औरतें भले ही प्रोफेशनल हजाम न हों
लेकिन इनके आगे बड़े-बड़े हजाम
भरते हैं पानी
जब चलता है इनका दराती उस्तरा
इनमें से अधिकतर ने नहीं पढ़ा है
गणित
मगर इनके ज्यामितिक ज्ञान का कोई सानी नहीं
बिजली की फुर्ती से कतरती हैं ये
अपने-अपने हिस्से की आयतें
वर्ग और त्रिभुजें
बिना स्केल पेंसिल और प्रकार के
काटती हैं
भिन्न-भिन्न प्रकार के स्टेंशियल
पहाड़ का सर हो जाता है
एकदम फैशनेबल, आकर्षक
फिल्मी सितारों
आज के नौजवानों ने
इन्हीं से सीखा होगा

बालों में कटिंग के अलग-अलग
डिजाईन बनवाना
पहाड़ ने गर्दन से छाती तक
ओढ़ रखा है स्लेट पत्थर के श्याम-श्वेत
मकानों से बना चेकदार काफिया
गेहुँवी हरी टी शर्ट पहने पर्वत
लगता है एकदम स्मार्ट
हेंडसम ओल्ड यंग मैन
औरतों ने रख दी है
अपने-अपने हिस्से की आकृतियाँ
अपने देसी फार्मूले से बदलकर
बड़े-बड़े शंकु और बेलन में
निरा मूर्ख था वह आदमी
जिसने बनाया था मुहावरा
घास काटना
'घास काटना' होता है !
2013

तुम्हारी सरिता

सागर
सुनो!
तुम मेरे दोनों ओर
बिछवा दो कड़ा पहरा
यदि तुम चाहते हो
कि मैं तुम तक पहुँच पाऊँ
सुरक्षित
मुझे इन्सानों से
डर लगने लगा है
तुम्हारी
सरिता
2019

जन्म 1975, पैतृक गाँव ददाहू, जिला सिरमौर, हि.प्र.
[साहित्यालोक बायरी, डाक. व तह. ददाहू, जिला सिरमौर, हि.प्र.-173022]
मो. 94187 40772

दो कविताएँ

❑ विजय विशाल

मन का पीपल हो जाना

नन्हा सा पीपल का पौधा
रोपते
सोचा न था
कि एक दिन पेड़ बन
यह मेरी पहचान भी बन जायेगा।

पौधे से पेड़ बन चुके
इस पीपल की छाँव में
बैठे लोग-बाग
अक्सर जब यह कहते हैं
फलां ने लगा रखा है यह पेड़
और फलां ने बनाया है
बैठने को यह 'टयाला'
यह सुन
उस विशालकाय वृक्ष की तरह
पीपल हो जाता है मन।

मन का पीपल होना
और नज़दीक
होना है पृथ्वी के
ताकि महसूस
किया जा सके
मनुष्य होने का सुख

2015

बूढ़ी औरतें

गाँव में
बूढ़ी औरतें
मन से
कभी बूढ़ी नहीं होती।

वे
अल सुबह
जलाती हैं चूल्हा
बुहारती हैं घर-द्वार
किवाड़ की ओट
व दीवार के कोने में बने
मकड़ी के जाले को
ऐसे भाव से हटाती हैं
जैसे मन को कर रही हों
चिंतामुक्त।

गाँव की बूढ़ी औरतें
उकड़ूं बैठ
निगोड़ती हैं खेत
और इलाके के
प्रतिष्ठित देवता को स्मरण कर
करती हैं प्रार्थना
कि खूब होनी चाहिए
इस बरसात बरखा
ताकि डंगरों के चारे में कमी न रहे
मानुष का क्या
वो तो डिपू के राशन से भी
भर लेता है पेट।

गाँव की बूढ़ी औरतें
आँगन में बैठ
पहरती हैं घर
निघवालती हैं
पोते-पोतियों को
दिन भर

और काँपते हाथों
लगाती हैं टुप्पे
तार-तार होते जा रहे रिश्तों में।

बूढ़ी औरतें
बिना शिकवा-शिकायत
पीती हैं दुःख
उलीचती हैं आशीर्वाद
और एक दिन
चुपचाप त्याग देती हैं
उस देह को
जिसे वर्षों पहले ही
सौंप दिया था
किसी अजनबी को।
2000

जन्म 1959, पैतृक गाँव मण्डी, जिला मण्डी, हि.प्र.
[गाँव व डाक. चैल चौक, जिला मण्डी, हि.प्र.-175028]
मो. 94181 23571

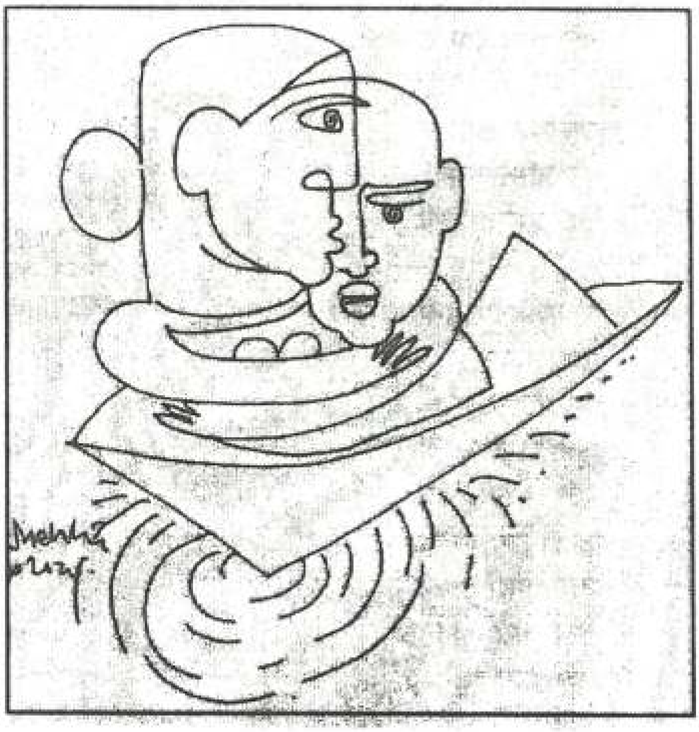

दो कविताएँ

❑ रेखा

ज़रूरत

दरवाज़ा खुलते ही
गली दबोच लेती है
और बिना किसी तैयारी के
भीड़ हो जाती हूँ

पीठ होते ही
पराया हो जाना
बन्द होती हुई
कुण्डी की तरह
गाँठ बाँध देता है भीतर

उस एक क्षण
पूरे अस्तित्व की
एक ज़रूरत होती है

दरवाज़े और गली के बीच
एक आँगन
घर और बाहर के बीच
खुली ज़मीन
खुले आकाश का
टुकड़ा भर विस्तार
जहाँ होना
दोनों जगह होने का
आश्वासन है।
1986

एक दिन अचानक

एक दिन अचानक बहुत ज़रूरी लगता है
यह काम
अपनी देह को
बरसों बंद पड़े संदूक की तरह खोलूँ
अपने खून, हड्डी-माँस सबसे
फिर कायम करूँ
अपनी पहचान
सारी धमनियों
में टहल आऊँ
फिर से
खोल कर देखूँ अपनी कोख
सुनूँ कोई अनुगूँज साँसों की
खोजकर निकालूँ कोई नन्हा पिंजर
एक दिन अचानक
याद आता है
अपनी चमड़ी को धूप दिखाऊँ
रोम-रोम में लहरा दूँ हवा
फिर से
झाड़ूँ, बुहारूँ, सँवारूँ—
सारी अंतड़ियाँ
चेहरे को
घुटने पर रखे रूमाल की तरह सहेजूँ
एक दिन अचानक
चढ़ता है चाव
फिर से ओढ़ूँ अपनी देह
देखूँ
क्या वह मुझे आज भी
पहन पाएगी?
1997

जन्म 1951, पैतृक गाँव मण्डी, जिला मण्डी, हि.प्र.
['तथागत', 214/1/1, लोअर जवाहर नगर, मण्डी, हि.प्र.-175001]
मो. 82190 84406

दो कविताएँ

□ सरोज परमार

नदी का रोमांस

लेटा हुआ मदमस्त
जवान पुल
और उस पर लपट झपट जाती
कई कमसिन गाड़ियाँ
काँप-काँप जाती नदी

याद करती अपना उद्दाम यौवन
बारिशों का बावला मौसम
चूम चूम कर निढाल करती
होती स्वयं
और लौट आती धरा पर
पयस्विनी बन...

उस पुल के नीचे बहती
सूखती कृशकाय नदी
आज भी चाहती है पुराना प्रेम
उद्दाम यौवन
बावला मौसम
परन्तु उठ तक नहीं पाती।

भोली नदी
नहीं जानती
पानियों और पुलों की दूरियाँ
काल की
विकराल मजबूरियाँ।
2012

हुनर

मेरे मौला!
मैं तेरे खेत में उपजे
अन्न के आटे की लोई
तेरे हुनर का कमाल है
तू बेलता रहा गोल गोल
मैं आग की लपटों पर भी
फूलती चली गई।

2010

पैतृक गाँव पालमपुर, जिला कांगड़ा, हि.प्र.
['अक्षत', सुग्घर रोड पालमपुर, जिला कांगड़ा हि.प्र.-176061]
फोन : 01894-4230869

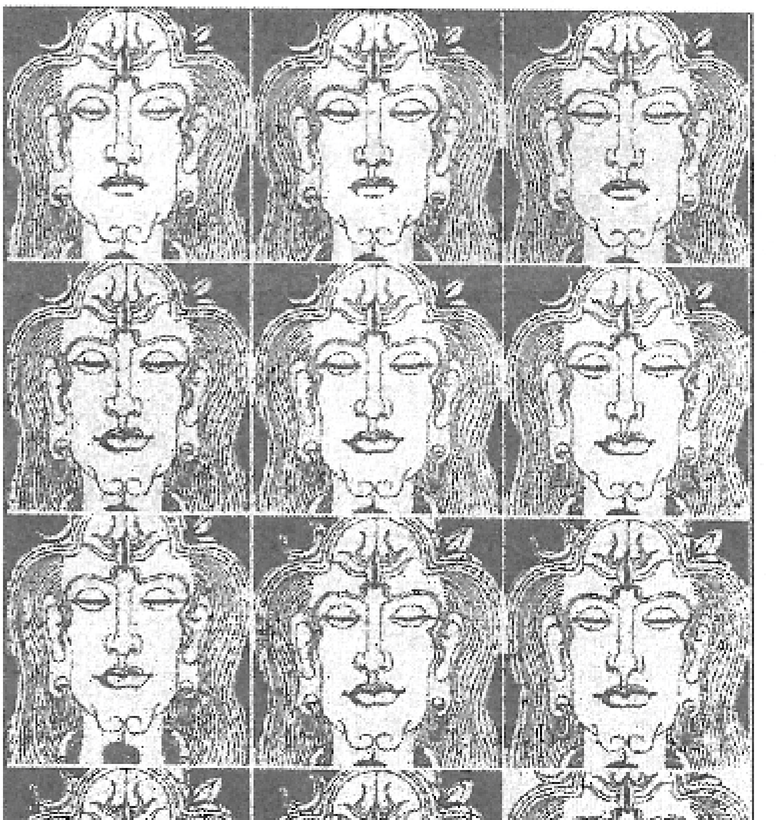

दो कविताएँ

❑ चन्द्ररेखा ढडवाल

कैद लड़की

कैद लड़की ने कहा कि उसके साथ गलत हो रहा है
उसी के साथ के कुछ दूसरे लोगों को
घर जाने दिया गया है...
पिता ने समझाया कि यह होता आया है
सम्पर्क सूत्र हों तो सधता है बहुत कुछ
बात बढ़ाने से क्या...

हो सकता है कुछ और बुरा हो जाए मसलन
वे दीवारें ऊँची कर दें
कि बरामदे से भी तुम देख न सको
पहाड़ धूप बादल...

तुम्हारे खाने में कुछ मिला दें
कि तुम नींद में रहो
सब से बड़ी बात
बढ़ा दें तुम्हारी कैद की अवधि
तुम्हारे अपराध में जमा कर दें अपने परीक्षणों के नतीजे
जो तुम्हारे खून से ज़्यादा
उनकी परख नलियों पर लिखे नाम पतों का सच है
बेहतर है काट लो निश्चित समय
बगैर बोले...

मतलब बगैर सोचे लड़की ने कहा
और द्वार बन्द कर खुले में
खिड़की के सामने जा खड़ी हुई...
कान बजे! अवतरित हुई दूसरी लड़की...

न हो कुछ
बात तो करनी चाहिए
पूछने ही चाहिए सवाल...
खिल उठी बुझी बुझी-सी उदास लड़की
सवालों की रूपरेखा बनाते उलझ गई वह
बढ़ते-बढ़ते बढ़ गया वृत्त प्रश्नों का
आसमान तक...
2021

वे सोच रहे हैं

तुम सोचो मत
वे सोच रहे हैं
सृष्टि के पहले दिन से
निरन्तर

तुम मत देखो
देखने से चीज़ें साफ हो जाती हैं
इतनी कि सब भरम मिट जाते हैं
और भरम मिट जाने पर
किसी को भरमाया नहीं जा सकता

तुम केवल सुनो
सुने हुए के
शब्द-शब्द को
समेटते हुए मुट्ठियों में
इस तरह कि मुट्ठियाँ खुलें भी
तो झरें नहीं अर्थ
खुले नहीं रहस्य
उन आज्ञाओं का
जिनके अन्तर्गत
तुम गृहिणी सलज्ज सलोनी
और गणिका ढीठ चितवन वाली
दोनों एक साथ
2010

जन्म 1951, पैतृक गाँव धर्मशाला, जिला कांगड़ा, हि.प्र.
[227, श्यामनगर, धार्मशाला, हि.प्र.-176215]
मो. 94181 11108

तीन कविताएँ

❑ इशिता आर. गिरीश

मैं मौसम नहीं

नहीं हूँ सूखा
मैं नहीं हूँ बाढ़
या गर्मी, सर्दी, पतझड़, बहार भी
मैं तो हूँ शाख
जिस पर मौसम आते हैं
गुज़र जाते हैं।
1988

आज सुबह

कक्षा से पहले
मेरा सर था
डेस्क पर पड़ी
मेरी बाँहों पर झुका।
उसके नाम की पुकार पर
मैंने चुपके से उस ओर देखा।
खिखिला रहे थे
सब लड़के-लड़कियाँ।
उसके खूबसूरत बालों की जगह
अब हैं
छोटे-छोटे
कतरे हुए नुकीले काँटे!
लज्जा से लाल है उसका चेहरा
और हंस रहा है वह!
कितनी मोहक उसकी मुस्कान।
उसका दर्द

मेरे दिल में
बहुत ज़ोर से चुभा!
2013

अलविदा!

तुम एक सुन्दर पल में आये।
सुनहरी किरणों से भर गये
मेरे किशोर पल!
अब
दूसरी ही किसी दिशा में
उड़ जाओगे—
और
मैं भी चल दूँगी कहीं और
जैसे बदल जाता है और सभी कुछ
बदल जाता है
यह अहसास भी
जिसे कहते हैं—प्रेम!
यह भी नहीं होता शाश्वत
चले जाओ तुम!
मैं भी होती हूँ अब विदा!
रहोगे तुम सदा
मेरी यादों में
मेरा नन्हा सा
पहला प्यार बन कर,
2013

जन्म 1968, पैतृक गाँव कुल्लू, जिला कुल्लू, हि.प्र.
[105, शास्त्री नगर, कुल्लू, जिला कुल्लू, हि.प्र.]
मो. 98169 70519

दो कविताएँ

❑ रेखा गक्खड़

किचन से कविता की ओर

कविता नज़र आती है मुझे
मेरे किचन में भी,
अक्सर
जब सुबह छह बजे के अलार्म के साथ
किचन जगाता है मुझे
जहाँ से होता है शुरू
किचन में मेरा
काव्यमय सफर...
मैं गूँथती हूँ आटे संग कविता यहाँ
सेंकती हूँ तवे पर
रोटियों-सी कविता
कभी कड़छी से कड़ाही पर
लिखती भी हूँ कविता
हाँ, नज़र आती है मुझे किचन में भी कविता
तब जब
टोकरी में रखी सब्ज़ियाँ
निहारती हैं मुझे उत्सुकता से...
जब शाम की चाय की मीठी चुस्कियाँ,
धीरे-धीरे
मिटाने लगती हैं पूरे दिन की थकावट
जब नज़र आती है
एक मीठी-सी कविता
किचन में...
दूसरे ही पल जब सिंक में
बेसुध

एक दूसरे के ऊपर
ऊपर नीचे
दाएँ-बाएँ
मुँह औंधे
पड़े बर्तन
देख रहे होते हैं मुझे
उम्मीद भरी नज़र से
यहाँ भी दिखती है कविता मुझे...
सारे
रस छंद अलंकार नज़र आते हैं मुझे यहाँ
अक्सर... / कभी-कभी
बन जाता है मेरा किचन भी
काव्यमय-सा।
2020

उस दुनिया में जीना है

साथी चल अब
उठा हाथ में कुदाल
चलें खेत खलिहानों की ओर
बोयें कुछ मोहब्बत के बीज
कि / टीवी पर चल रहे मन्दिर-मस्जिद,
वाद-विवाद के बाहर भी एक दुनिया है
जहाँ मिट्टी की सुगंध है
सुनहरी फसलों की खुशबू है
जहाँ इन्सान
सिर्फ / इंसान है
न हिन्दू, न मुसलमान
सिर्फ इन्सान
मोहब्बत ही मज़हब
इंसानियत ही उसकी पहचान
मुझे उसी दुनिया में जीना है
2020,

जन्म 1989, पैतृक गाँव भून्तर, जिला कुल्लु, हि.प्र.
**[पत्नी श्री शम्मी कुमार गक्खड़, मोहल्ला मुच्याड़ी,
डाक. हरदासपुरा, तह. व जिला चम्बा, हि.प्र.-176318]**
मो. 98162 23337

दो कविताएँ

❑ इंदु नवनीत भारद्वाज

मायका

देखने में आम लड़कियों जैसीं
मगर थोड़ी ज़्यादा
निडर सबल और सहनशील होती हैं
वे औरतें जिनके मायके नहीं होते

उनके लिए बना ही नहीं होता
नवविवाहिताओं का पीहर वाला महीना
या भादों में बेटियों को पींगें झुलाता
शीशम का पेड़
वे आँखों के काजल में छिपा लेती हैं
काली रातों का भय
कलावे के नीचे कस कर बाँध देती हैं
काले महीने की काली नज़र...

भीतर नमी बचाए रखने की कोशिश में
वे ओढ़ लेती हैं
पेड़ों की छालों का खुरदरापन
समंदर को दबा देती हैं
बर्फ़ की तहों के नीचे
वे कभी-कभी
नज़रें चुरा कर बात करती हैं
ताकि पलकों पर टिकी नमी
हवाओं में फैल न जाए...

अपने ख़ालीपन में ख़ुद ही
बिखेरती या सहेजती रहती हैं

रंगों की डिबियाँ
खुद ही बना लेती हैं
त्योहारों की खिचड़ी और मालपुए
तारों पर छोड़ आती हैं
वेदना की पोटलियाँ

मामा का ज़िक्र आते ही
वे बच्चों को दिखाती हैं आकाश
और चाँद के चमकीले बट्टे से
बादलों की शिला पर
तोड़ डालती हैं
मुश्किलों के तमाम सख़्त अख़रोट...
2017

डर

अतीत की तंग गलियों से होकर
पहुँची हूँ आदिम सभ्यताओं के बीच
जहाँ पत्थरों को तराश रहे कुछ
छालों भरे हाथों को
हड़का रही दमदार आवाज़
एक जलती लकड़ी हाथ में उठा
अज्ञात का डर पैदा कर के
पूरे अलाव पर
अपना वर्चस्व बना लेती है
और उसके आगे
अपने ही खून में डूबी
सारी सभ्यता
घुटनों पर आ गई है...

मेरी यात्रा मुझे ले जाती है
कुछ अज्ञात कन्दराओं में
जहाँ कुटिल भाव
चेहरे पर चिपकाए
पहली हाथगाड़ी
खींचने के लिए मजबूर
करता एक 'पशुपति'
अपनी क्रूरता की कहानी

लोगों की उधड़ी पीठों पर लिख रहा है...
मैं समस्त भग्नावशेषों को हटाकर
देख रही हूँ
क्राँति के स्वरों को
सामन्तवाद के हाथों से
सलीबों पर लटकते
और विद्रोह के भावों को केवल
आँखों तक आकर
मन की ओर लौट जाते...

अपने ही हाथों
को पिघला कर
ताजमहल बनाने में
जुटे कारीगर की चीखों ने
मोटी दीवारों से टकरा कर
अपने ही कानों में
सुराख कर दिए हैं...

मगर तब भी
वह यंत्रवत उकेर रहा है
मृत्यु की तारीख़
अपनी ही कब्र के पत्थर पर...

घबरा कर
वर्तमान में लौट आती हूँ
मैं यहाँ भी देख रही हूँ
उसी आदिम बर्बरता ने
पहले पानी, रोटी, ज़मीन
और अब हवा पर भी
एकाधिकार कर लिया है...

और एक बार फिर
उखड़ती साँसों के साथ
घुटनों पर आ गई है
सबसे नई सभ्यता...

2021

जन्म 1981, पैतृक गाँव कुल्लू, जिला कुल्लू, हि.प्र.

[लोरन मोड, वार्ड नं. 4, अप्पर सुल्तानपुर, जिला कुल्लू, हि.प्र.-175101]

मो. 70180 47730

पाँच कविताएँ

❑ श्रीया

लड़कियों जैसी

ये याद रखना तुम...
तुम्हारा मन से लड़की होना ज़्यादा जरूरी है
तुम्हारे कपड़े तुम्हारे मन के बारे में कैसे बता सकते हैं
बिंदिया पायल झुमका तुम्हारे दिल का पता कैसे बता सकते हैं
क्या शरीर की नाजुकता ज़रूरी है
क्या श्रृंगार करना ज़रूरी है
आँखों का काजल उसके नज़रिये का पता कैसे बता सकता है
लड़की हो लड़कियों जैसी दिखा करो
और मन
उसका क्या?

ये याद रखना तुम...
तुम्हारा मन से लड़की होना ज़्यादा ज़रूरी है
2020

मैं लिखना नहीं चाहती

मैं नहीं लिखना चाहती अपना मन
नहीं लिखना चाहती, प्रेम, युद्ध
स्त्री, पितृसत्तात्मक समाज
लोकतन्त्र, सरकार
सारे शब्दों, भावों, विचारों को लिखा जा चुका है
मैं चाहती हूँ सारे शब्दों को मिलाकर जला देना
और मैं बचा लूँगी खुद को आत्मकथन से

बर्तन

दो बर्तन घर के बाहर आँगन के इक कोने में अलग से पड़े थे
और मैं उन्हें घर के अन्दर के बर्तनों से कभी मिला ना पायी
वो खुद ही उन्हें उठाते, खाते और मांज देते
और मैं उन्हें घर के अन्दर कभी खिला ना पायी
वो वर्तन मुझे दूर से ही घूरते, मुँह से इक शब्द ना कहते
और मैं उन्हें अपने साथ बिठा कर बात भी ना कर पायी

मन्दिर

दो भगवान, एक मेरे एक उनके
नीचे उनके भगवान, ऊपर मेरे
मेरे जहाँ जूते खुलते, उनके हाथ जुड़ते
उनका भगवान पत्थर, मेरा भगवान मूर्ति
उनका भगवान गरीब, मेरा भगवान अमीर
उनको इजाज़त नहीं मेरे भगवान तक जाने की
और मैं अपने भगवान तक पहुँच ही ना पायी

कुआँ

कुएँ का पानी एक दीवार से बंटा हुआ
आधा मेरा, आधा उनका
एक स्रोत से निकलता हुए, मुझमें और उनमें बंटता हुआ
उन्हें इजाज़त नहीं मेरा पानी पीने की,
और मैं अपना पानी पी प्यास बुझा ही ना पायी
2020

जन्म 1994, पैतृक गाँव सतौन, जिला सिरमौर, हि.प्र.
[गाँव व डाक. सतौन, तह. पांवटा साहिब, ज़िला सिरमौर, हि.प्र.-173029]
मो. 82191 41014

दो कविताएँ

❑ ईना कंवर

जलाशय का चेहरा

मैं एक छोटा-सा जलाशय थी
ठहरा हुआ पारदर्शी जल
निर्मल मन

उस शाम गुज़रते हुए
तुम पल भर के लिए रुके और
उछाल दी एक फूल मुस्कान
जलाशय का अंतर हिला और
तरंगों में फैलता गया

उस शाम के बाद
मैंने तुम्हारे नाम कर दी कई शामें
रोम रोम खिल उठते अनगिन कमल
तुम्हारी मुस्कान के साथ
कहीं काँप उठता अंतरतम
और कमल कमल फैल जाती कंपन
मुझे देख कहता सारा शहर–
निखर आया है लड़की का रंग
इधर बहुत दिन हुए
तुमने आना ही छोड़ दिया
कह रहा है मेरा शहर–
मुरझाया है लड़की का चेहरा
और जलाशय के सारे कमल
1990

अपना एकांत

ऊब गई हूँ किताबें पढ़ते
पर नींद है कि आती ही नहीं
बुझा देती हूँ बत्ती
पता नहीं कब

खिड़की, दरवाज़े की दरीचों
या रोशनदान से
चुपके चुपके कमरे में
आ जाती है रात
चारों कोने छा जाता है
उसका घना सांवला चेहरा

चीज़ें अपने में ही धुँधला गई हैं
तस्वीरों के फ्रेम
घड़ी का शीशा
या सिर्फ हिलते पर्दे
हल्के-से नज़र आते हैं

धीमा पंखा,
दीवार घड़ी और मेरी साँसें
साथ-साथ चल रही हैं

अब देखना और सुनना
बंद कर दिया है मैंने
शुरू किया है केवल
कल के बारे में सोचना

सूरज निकलेगा
अपनी दुकान खोलेगा पवन पनवाड़ी
रमेश सब्जी वाला ऊँची आवाज़ में कहेगा

ऑफिस बंद हो चुका है
ढल रही है शाम
वही शहर चेहरे भी वही
घर है तो घर जाना ही है

खत्म है चाय की प्याली
समय है कि खत्म नहीं होता

टी. वी. है तो चित्रहार है
लेकिन अच्छे नहीं हैं गाने
उठकर बाहर आ गई हूँ छत पर
छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं
जुगनुओं-सी छिटकी हैं बत्तियाँ

पेट है तो भूख है ही
अम्मा ने परोस दिया है खाना

रात काफी निकल चुकी है
सोने का कमरा है अपना
डबल-बैड है
शरीर है आखिर
कब तक सीधा खड़ा रह सकता है ?

वही किताबें
गूँ-गूँ करता पंखा
टिक-टिक घड़ी
हर दिन गुज़र रहा है
चाय की प्याली और अखबार के साथ
एकाध नई खबर या
ऑफिस की कोई घटना
और वही बरसों पुरानी
अम्मा की पीठ की पीड़ा।
1990

[हरिकुटीर, 993/5, नाहन, हि.प्र.-173011]

हिमाचल की हिन्दी कविता : एक परिदृश्य

❑ विजय विशाल

देश की संस्कृति और विचारधारा के स्वस्थ विकास में कविता भी एक माध्यम है। हिमाचल की हिन्दी कविता पर कोई भी सार्थक बातचीत तब तक अधूरी रहेगी, जब तक कि हम धरातल की सच्चाइयों और उनके साथ कवि के रचनात्मक रिश्ते को न समझें। हिन्दी कविता में नई कविता के बाद युवा पीढ़ी अपना नया सृजनात्मक मुहावरा लेकर आई थी। इसकी पृष्ठभूमि में था सन् 1960 और उसके बाद का समय, समाज और राजनैतिक व्यवस्था। चीन और पाकिस्तान से युद्ध, नेहरू का अवसान। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद उम्मीद थी कि आकांक्षाओं के अनुरूप भारत बदलेगा। एक स्वस्थ और वैज्ञानिक सोच सम्पन्न भारत का निर्माण होगा। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। हिमाचल में हिंदी कविता की यात्रा इसी समय से आरम्भ होती है। हालाँकि छठे दशक में जब राष्ट्रीय स्तर पर कविता, नयी कविता के दौर से गुज़र रही थी उस समय हिमाचल में रोमानी या वैयक्तिक गीतों का बोलबाला था। आधुनिक जीवन-बोध को प्रतिच्छवित करने वाली हिमाचल की हिंदी काव्य रचनाओं का सृजन सातवें दशक के आरम्भ से मान सकते हैं। इस दौर की कविताएँ संवेदना और शिल्प के स्तर पर मुख्यधारा की हिंदी कविता के समकक्ष अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने लग गई थी। सुंदर लोहिया, अनिल राकेशी व श्रीनिवास श्रीकांत आदि कतिपय कवियों की कविताएँ हिमाचल से बाहर मुख्यधारा की पत्रिकाओं में प्रकाशित होने से हिमाचल की हिंदी कविता को पहचान मिलने लगी थी।

यह सही है कि दशकों पहले हिमाचल जब राज्य के रूप में अस्तित्व में आया तभी से यहाँ का लेखक राष्ट्रीय साहित्यिक परिदृश्य में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने को संघर्षरत रहा है और बड़े पैमाने पर नहीं, अपितु किंचित मात्रा में सफल भी रहा है। मगर पिछले एक-डेढ़ दशक से परिदृश्य बदला है। प्रकाशन के क्षेत्र में नई तकनीक के आने से तथा सोशल मीडिया जैसे प्रचार माध्यमों ने पारम्परिक लेखक-प्रकाशक-पाठक के रिश्तों को प्रभावित किया है। आज स्थिति यह है कि साहित्य की हर विधा में खूब जम कर लिखा जा रहा है। पुस्तक प्रकाशन भी भारी मात्रा में हो रहा है, भले ही प्रकाशित पुस्तक की प्रतियाँ दहाई या सैकड़ा में ही क्यों न हों। इंटरनेट पर ई-पत्रिकाओं की भरमार है। बाकि फेसबुक जैसे कई आभाषी प्लेटफार्म रचनाकार के मोबाईल में उपलब्ध हैं। अनेकानेक राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक संस्थाएँ रचनाकारों को विभिन्न प्रकार के तमगों से पुरस्कृत करके उनके लेखन को पहचान दे रही हैं। इन नई परिस्थितियों में सही-गलत, उच्च स्तरीय-निम्न स्तरीय लेखन की बहस

भी जारी है। वरिष्ठ-कनिष्ठ, श्रेष्ठ-निम्न, नए-पुराने की पहचान में लेखक समाज उलझा हुआ है। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता, जनवादी कविता आदि कई मंजिलों को तय करती हुई आज की हिंदी कविता जिस मुकाम पर पहुँची है, वहाँ कई स्तरों पर एक अनिश्चय और भ्रम की स्थिति बनी है। यथार्थ से उत्पन्न जिन समस्याओं से बेचैन कवि अपने समय को समझने की कोशिश करता हुआ एक नया संसार बनाने की अभिलाषा से प्रेरित होकर रचनाकर्म में लीन था, उसकी सार्थकता पर ही आज प्रश्नचिह्न लग गया है। शायद उन्हें यह अपेक्षा नहीं थी कि चीजें इस हद तक बदल जाएँगी, जिसमें स्वयं उनके लिए उसमें अपनी जगह तलाश करना मुश्किल हो जाएगा।

जार्ज थाम्प्सन ने आदि-कबीलों का गहरा अध्ययन कर, वहाँ कविता की जीवंत उपस्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा है—'जब से संवाद जन्मा, तभी से कविता।' उनके अनुसार भाषा का प्रयाण पद्य से गद्य की ओर है। ऐसी स्थिति में किसी क्षेत्र विशेष की कविता-यात्रा पर कुछ प्रामाणिक लिखना सरल या सहज कार्य नहीं है। दूसरा यह कि जीवन की जटिलताएँ कविता को भी जटिल रूप दे देती हैं। ऐसे में किसी पूर्व काल-खंड की कविताओं का आज के समय विश्लेषण कर पाना अपने आप में एक दुरूह कार्य है। जहाँ तक हिमाचल की हिंदी कविता की बात है इसका प्रामाणिक इतिहास तो महज़ आठ दशक पुराना है। इसमें भी शुरूआती समय में जो काव्य सृजन हुआ है उसकी भी कुछ छिटपुट जानकारियाँ ही विभिन्न आलोचनात्मक आलेखों में उपलब्ध हैं।

जिनके अनुसार आरंभिक हिमाचली हिंदी कविता के जो पुरोधा कवि हुए उनमें दो तरह के लोग शामिल रहे। एक वे जो जन्म से हिमाचली थे और दूसरे वे जो मूलतः हिमाचली नहीं थे, मगर जिनकी कर्मस्थली आजीवन हिमाचल प्रदेश ही रहा। इन आरंभिक कवियों में अनिल राकेशी, सिरमौर, सुंदर लोहिया, मण्डी, चतुर सिंह, सिरमौर, नन्देश कुमार, चम्बा, पीयूष गुलेरी, कांगड़ा, रामकृष्ण, कांगड़ा, रामदयाल 'नीरज', सिरमौर आदि मूलतः हिमाचली थे, वहीं अमिताभ जिनका वास्तविक नाम पद्म प्रकाश गुप्त है, कैलाश भारद्वाज, ज़िया सिद्दीकी, परमानन्द शर्मा, श्रीनिवास श्रीकांत, सत्येन्द्र शर्मा आदि उन कवियों में से हैं जिनमें से अधिकतर विभिन्न सरकारी विभागों में कार्यरत रहते हुए हिमाचल में ही साहित्य सृजन में मशगूल रहे और अंततः हिमाचली लेखकों में ही शुमार हो गए। इन आरम्भिक वरिष्ठ कवियों/लेखकों के अतिरिक्त ऐसे कवियों/लेखकों की फेहरिस्त और भी लम्बी है, जिन्हें मूलतः हिमाचली न होने के बावजूद हिमाचली लेखक ही माना जाता है।

अपनी विशेष भूगौलिक परिस्थितियों के चलते इस पहाड़ी प्रदेश का राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक वातावरण उत्तरी भारत की हिंदी पट्टी से थोड़ा अलग रहा है। जीवन संघर्ष कम नहीं हैं, मगर इतने दुरूह भी नहीं कि ज़िन्दा रहने के लिए किसी से गला काट प्रतियोगिता करनी पड़े। देवी-देवताओं के प्रति आस्थाओं के चलते जीवन संघर्ष के बरअक्स भाग्यवाद ज़्यादा प्रभावी रहा है। पहाड़ों में हवा और पानी ठण्डा होता है जिसके सेवन से मनुष्य शांत चित रहता है। इसलिए अभावों में खुशियाँ खोज लाना यहाँ के आम जनमानस की प्रवृत्ति रही है। ये अलग बात है कि वर्तमान परिस्थितियों में यह सब बीते कल की बात होने जा रही है। मगर पाँच-सात दशक पहले ऐसा न था। हम पाते हैं कि यहाँ लेखन से जुड़े अधिकतर लोग मध्य या उच्च मध्यवर्ग से थे। अधिकांश नौकरी पेशा। इसलिए यहाँ की आरम्भिक

कविताओं में प्रतिरोध या जीवन संघर्ष के वह स्वर व तेवर नहीं मिलते, जो देश के दूसरे हिंदी भाषी राज्यों में मिलते हैं। कुछ हद तक यह स्थिति आज भी बनी हुई है। हालाँकि आज भूमण्डलीकरण के चलते यहाँ की परिस्थितियाँ, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक वातावरण शतप्रतिशत प्रभावित हो गया है मगर फिर भी कुछ ऐसा बचा है, जो इस प्रदेश के सौहार्द को देश के अन्य राज्यों से अलग पहचान देता है। खैर यह एक अलग मुद्दा है, जिस पर आगे बात करेंगे।

सातवें दशक के अधिकतर कवियों ने जिनके नामों का ऊपर ज़िक्र किया गया है, अपने परिचित संसार, अपने परिवेश और अपने युग के सामाजिक यथार्थ— चाहे उसका फलक इतना व्यापक न हो— को गहराई व ईमानदारी से व्यक्त करने का प्रयास किया है। अपनी एक कविता 'सत्येन्द्र के नाम' में श्रीनिवास श्रीकान्त लिखते हैं—'कभी-कभी मन करता है/ ऊपर का लबादा उतारा जाए/ और ढोल पीटुओं के लिए/ कमरतोड़/ शब्दतंत्र की रचना की जाए।' एक अन्य कविता में वे कहते हैं—'धुन्द में लिपटे हुए सदमें की तरह/ एक बन्दर बैठा है बारूद के पहाड़ पर/एक खतरनाक पुल के पार/गुफा में बन्द है आदमी की नियति/ तोते में कैद हो जैसे राजा की जान।' (नियति—श्रीनिवास श्रीकांत)

इसी तरह सुन्दर लोहिया 'जब लौटूँगा' शीर्षक कविता में कहते हैं—'मैं अच्छी तरह जानता हूँ /मेरी हत्या हो चुकी है/ गर्म विषाक्त चुम्बन से/ मुझे मारा जा चुका है/ हत्यारा छाती से उतर बिल में घुसकर/सुरक्षित हो गया है/ मैं जानता हूँ—अच्छी तरह जानता हूँ/ कि कैबरे नर्तकी के नंगे जिस्म/और ब्याहता प्रेमिका की याद को/ किसी लोहार की धधकती भट्ठी में झोंक/ जब लौटूँगा/ तो बिल उखाड़—उससे लड़ूँगा/ जलता फौलाद छिड़कूँगा।'

इन आरम्भिक कवियों की कतार में आगे चल कर शामिल होते हैं देव बडोतरा, केशव, रेखा, तुलसी रमण, महाराज कृष्ण काव, सतीश धर, दीनू कश्यप, अरविन्द रंचन, ओम प्रकाश सारस्वत, कुमार कृष्ण, वरयाम सिंह, आनंद बंसल, योगेश्वर शर्मा, यादवेन्द्र शर्मा, कुल राजीव पंत, देवेन्द्र धर, अनूप सेठी, गौतम व्यथित, प्रत्यूष गुलेरी, प्रकाश पंत, इंदिरा कश्यप, प्रफुल्ल कुमार परवेज, संजय शर्मा, विजय रंचन, ईना कंवर, शिव कुमार 'सूर्य', सुरेन्द्र नाथ वर्मा, संगीता, शरत गेहया, बद्री सिंह भाटिया, के.आर. भारती, अवतार एनगिल, मधुकर भारती, केशव चन्द्र शर्मा, विधि चंद विद्यार्थी, प्रेम भारद्वाज, गुरमीत बेदी, जयइन्द्र पाल, कमल प्यासा, भगवान देव चैतन्य, दिनेश धर्मपाल, मस्तमन सैनी, कुंवर दिनेश सिंह, तेजराम शर्मा, हंसराज भारती, रत्नचंद निर्झर, रत्नचंद 'रत्नेश' अशोक दर्द, लीम चंद, बी.आर. देवरानी, डॉ. आर.के. गुप्ता, जयदेव विद्रोही, अरुण शर्मा, रमेश मस्ताना, प्रभात शर्मा, रोशन जसवाल, जगदीश बाली, शेर सिंह, कृष्ण चंद्र महादेविया, चिर आनन्द, सतीश चन्द्र कौड़ा आदि अनेक ऐसे कवि, जिनमें से कुछ निरंतर कविताएँ रचते रहे तथा आज भी काव्य सृजन में रत हैं, कुछ कविता छोड़ कहानी की ओर मुड़ गए और कालांतर में कवि से ज़्यादा कहानीकार के रूप में जाने गए, कुछ ने थोड़ी-बहुत रचनाओं के बाद इस क्षेत्र से दूरी बना ली। हो सकता है सूचनाओं के अभाव में कुछ नामों का उल्लेख यहाँ न हुआ हो इसे इस पत्र लेखक की जानकारी के अभाव के रूप में लेना ही श्रेयकर रहेगा।

इनमें अधिकतर कवियों के कविता संग्रह समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं। किसी के तीन, किसी के दो तो किसी का एक। मगर कुछ ऐसे नाम भी हैं जिनकी कविताएँ तो

चर्चित रहीं, मगर जिनका कोई कविता संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं से ही इन्हें कवि की पहचान मिली। सामाजिक संबद्धता और प्रगतिशील जनवादी चेतना इनमें से अधिकतर कवियों की कविता का प्रमुख स्वर रहा है, जो निरंतर प्रखर से प्रखरतर होता चला गया है। इन कवियों की कविताओं के कथ्य और प्रस्तुति में उलझाव नहीं है। 'हमले से बढ़कर/हिफाजत की कोई रणनीति/ नहीं है/बेकार हैं यह सवाल कि/संगीन किस कारखाने में/ढली है/फर्क पड़ता है सिर्फ इस बात से/कौन-सा हाथ उसे थामे है/और किसका सीना उसकी /नोक पर है।' (चीख नहीं, संगीत—अनिल राकेशी) इनमें से अधिकतर कवि मानव की स्वस्थ चेतना के कवि हैं। अपने समय के विकृत तथा विसंगतियों के शिकार समाज को गहराई के साथ देखने-समझने की स्वस्थ दृष्टि इनके पास मौजूद है।

इनकी विशेषता यह है कि ये विकृत के साथ समझौता करने को तैयार नहीं, अपितु अपने तेज़-तर्रार अंदाज़ में इसके खिलाफ मोर्चा संभालते हैं। इनकी कविताएँ समकालीन यथार्थ को रागात्मकता के साथ प्रस्तुत करती हैं। गहरी मानवीयता और चिरंतन आस्था का स्वर इनकी कविताओं को नई ऊर्जा प्रदान करता है। 'सिंहासन सजते हैं/भेड़ की ऊन से/राजतिलक भी होता है/भेड़ के खून से/पर निरीह भेड़ ठगी-सी/बस ऊन होती है/या खून।' (ढलान पर आदमी— तुलसी रमण) इसी तरह केशव अपनी एक कविता में कहते हैं—यह देश/ है/ एक कुर्सी/ बोलती है कुर्सी/ और दरियाँ सुनती हैं/कुर्सी चाटती है/वर्तमान/ और दरियाँ भविष्य बुनती हैं।' अपने व्यापक संदर्भ में इन कवियों की कई कविताएँ यांत्रिक युग के मनुष्य की नियति को व्यक्त करती हैं। कहीं-कहीं इस नियति को अमूर्तता से निकालकर ठोस वास्तविकताओं से जोड़ने की कोशिश करती कई कविताएँ समसामयिक यथार्थ पर प्रभावी टिप्पणी का रूप लेती प्रतीत होती हैं। इस संदर्भ में देव बडोतरा अपनी एक कविता 'वस्तुस्थिति' में कहते हैं—'इस शहर में/ आदमी के लिए/ आज का सबसे दुर्लभ/ अनुभव/ इन्सानी प्यार है/ जो अब लोक-कथा या गीतों में सुनने/ या पत्रिकाओं के रंगीन इश्तहारों में/ बस देखने का मिलता है/ यानी आदमी/ अपनी रूह को/ बहला रहा है/ सिर्फ आवाज़ों और तसवीरों के खयाली एहसास से।'

राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के महत्त्वपूर्ण कवि राजेश जोशी जब भोपाल में 'मारे जाएँगे' जैसी अपनी महत्त्वपूर्ण रचना लिख रहे थे, ठीक उसी समय हिमाचल के एक छोटे-से शहर मण्डी में दीनू कश्यप का 'खुले में आओ' जैसी कविता लिखना महज संयोग नहीं कहा जा सकता। बल्कि यह इस बात की ओर इंगित करता है कि राष्ट्रीय सरोकार से सुदूर कस्बे में बैठा रचनाकार भी उतना ही वाबस्ता है, जितना देश के बड़े शहर में बैठा एक बड़ा व महत्त्वपूर्ण कवि। जहाँ राजेश जोशी लिखते हैं—'धर्म की ध्वजा उठाए जो नहीं जाएँगे जुलूस में/गोलियाँ भून डालेंगी उन्हें, काफिर करार दिए जाएँगे/सबसे बड़ा अपराध है इस समय/निहत्थे और निरपराध होना/जो अपराधी नहीं होंगे, मारे जाएँगे।' वहीं दीनू कश्यप लिखते हैं— 'हवा बज रही है/शैतान की सीटियों की तरह/गूँज रही है/अपशकुन शंख नाद-सी/देखो—/यह सूचना है/एक कापालिक अनुष्ठान की/मेरे भाई खुले में आओ/समझो इस हवा का सबब/बेवक्त की आरतियों-अजानों का/समझो मर्म/नहीं तो मारे जाओगे/अपनी ही माया के भ्रम में/अपनी ही छद्म सुरक्षा के हाथों।'

हिमाचल की इस कविता यात्रा को समृद्ध करने में आरम्भ से ही महिला कवियों

का भी भरपूर योगदान रहा है। भले ही आरंभिक समय में उतनी महिलाएँ कविता लेखन में न रही हों, जितनी मात्रा में आज लिख रही हैं, मगर जो भी गिने-चुने नाम उस समय की महिला कवयित्रियों के मिलते हैं, इस कविता यात्रा में उनका बेहतरीन योगदान है। स्त्री मन की इसी पीड़ा को व्यक्त करती वरिष्ठ कवयित्री रेखा वशिष्ठ लिखती हैं—'कभी-कभी/आसपास की हर चीज़/कुछ कहने को बेचैन हो जाती है/मेरा दिल भी, दिमाग भी/प्रसव वेदना से कराहने लगता है/भावी कविता का जन्म/ऐसी ही दर्द और घुटन के अनन्तर/यूँ होता है।' सामाजिक ताने-बाने में एक स्त्री को उसका पूरा हक कभी नहीं दिया गया। कहने को तो उसे घर की मालकिन कहा जाता है मगर होता इसके विपरीत है।

सरोज परमार अपनी एक कविता में कहती हैं—'पिता!/मुझे मत देना/भांडे बर्तन/गहना गट्टा/कपड़ा लत्ता/दे देना थोड़ा-सा आकाश/बित्ता भर पृथ्वी/अंजुरी भर समुद्र।' वैसे ही एक दूसरा नाम चन्द्ररेखा ढडवाल का लिया जा सकता है। मूलतः कहानीकार चन्द्ररेखा ढडवाल अपनी छोटी-छोटी कविताओं में बड़ी बात कह जाती हैं जैसे—'आँगन झाड़ती/बुहारती औरत/झाड़ नहीं पाती/तन पर/चिपक-चिपक जाती निगाहें।' या 'औरत उछालती है पत्थर/और लहूलुहान भी/औरत ही होती है।' इसी कड़ी में आगे शामिल होती हैं—हरीप्रिया शर्मा, रूपेश्वरी शर्मा, प्रोमिला भारद्वाज, स्व. कांता शर्मा, इशिता आर. गिरीश, उरसेम लता आदि और अब युवा पीढ़ी की कतार में तो अनेक कवयित्रियाँ हिमाचल की हिन्दी कविता को अपनी रचनाओं से समृद्ध कर रही हैं। जिनमें कतिपय नाम लिए जा सकते हैं—संजु पाल, शैली किरण, इन्दु पटियाल, कृष्णा ठाकुर, पौमिला ठाकुर, किरण गुलेरिया, देवकन्या ठाकुर, कल्पना गांगटा, प्रीति शर्मा असीम, रेखा गक्खड़ 'रश्मि', दीप्ति सारस्वत, शकुन, पूर्वा शर्मा, प्राची शर्मा, वैशाली विष्ट आदि।

इन थोड़े से उद्धरणों को ध्यान में रखते हुए निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि ऊपर उल्लेखित हिमाचल के आरम्भिक हिंदी कवि सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करने में सफल रहे हैं। ख्यात कवि शमशेर बहादुर सिंह के शब्दों में कहें—'ये निश्चित रूप से अच्छे कवि हैं, परन्तु ये सब महाकवि नहीं है। 'होने वाले महाकवि के लिए' तो आज भी मैं यह मानता हूँ कि क्लासिक्स का व्यापक अध्ययन और विभिन्न भाषाओं के साहित्य से उसका गहरा परिचय अनिवार्य है।' समसामयिक लेखकीय प्रवृत्तियों को देखते हुए शमशेर कहते हैं—'उर्दू में एक दौर वह भी था, जब लोग बूढ़े हो जाते थे और दीवान नहीं छप पाता था। अपने उस्तादों से उनकी सीखने की ललक बनी रहती थी। आजकल तो यह प्रवृत्ति कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती। ज्ञान की प्यास और कुछ पाने की तड़प भीतर से जब तक नहीं फूटेगी तब तक समर्पण का भाव कहाँ से आएगा, जो अच्छे कवि को होने वाले महाकवि की दिशा में आगे बढ़ा सके।' उनकी यह टिप्पणी सार्वकालिक है, जो शायद वर्तमान दौर के कवियों पर ज़्यादा सटीक बैठती है। उनके अनुसार नए कवियों में आज के यथार्थ को भोगने, उसको महसूस करने की, उसको नाटकीय ढंग से कविता में प्रचारित करने की, उसके माध्यम से पाठक को चौंकाने की क्षमता बहुत है, लेकिन अपने अनुभव को सही ढंग से विश्लेषित करने की चेष्टा बहुत उथली है।

हिमाचल के इन आरम्भिक कवियों के समकालीन एक लुप्त कवि के बारे में बात करना चाहूँगा, जिनका ज़िक्र शायद ही 2010 से पहले कभी हुआ हो। वह कवि है कुल्लू से

हुकुम ठाकुर। साहित्य जगत से इनका परिचय करवाया युवा कवि गणेश गनी ने। गनी ने अपने किस्सागोई में हुकुम ठाकुर की कविताओं पर टिप्पणी करते हुए लिखा है—'इनकी कविताओं में बिम्बों, रूपकों, प्रतीकों और मुहावरों की भरमार है। इनकी अपनी एक अलग शैली है। शिल्प कमाल का है। सरल दिखने वाली कविताएँ जटिल हैं और जटिल कविताएँ सरलता लिए हैं।' गनी ने माध्यम बन इनकी कविताओं से साहित्य जगत को अवगत करवाया। फलस्वरूप 2010 के बाद इनकी कविताएँ हिंदी की सभी श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिकाओं यथा पहल, सदानीरा, अकार इत्यादि में प्रकाशित हुई। इस तरह हिमाचल के एक वरिष्ठ, मगर नए कवि से प्रदेश व देश के लोग परिचित हुए। जीवन के लगभग 65 बसंत देख चुकने के बाद सन् 2016 में इनका पहला कविता संग्रह आधार प्रकाशन से प्रकाशित होकर आया। अपने आसपास के वातावरण से विषय को चुन उसे कविता में पिरोने में इनकी महारत रही है जैसे—'वहीं घराट में आटे का फक-फक गिरना/दो पाटों की करतबगीरी नहीं/पानी का कमाल है/न पाट पीस रहे होते हैं/न आटा पीसा जा रहा होता है/ बल्कि सिर्फ और सिर्फ पानी जी रहा होता है।' ('ध्वनियों के मलबे से'—हुकुम ठाकुर)

समकालीन हिन्दी कविता की युवा पीढ़ी अपना नया सृजनात्मक मुहावरा लेकर आई है। इन कविताओं की अनेक दिशाएँ हैं। विविधता की दृष्टि से यह कविता अपने पूर्ववर्ती किसी भी काल की कविता से कहीं अधिक विविधतापूर्ण और बहुआयामी है। समकालीन परिदृश्य में रचना की अनेक सरणियों का विकास हुआ है। यहाँ विचारों की अनेक पद्धतियाँ और विचारधाराएँ परस्पर संघर्ष करती हुई देखी जा सकती हैं। परन्तु यह कम ही देखने को मिलता है कि इन विचारों ने कविता की संवेदना का अतिक्रमण किया हो। वस्तुतः समकालीन कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि पर यदि विचार किया जाए तो यह भी कह सकते हैं कि समकालीन कविता में उन सभी सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक विचारों और प्रवृत्तियों को अभिव्यक्ति मिलती रही है या मिल रही है, जिनका सरोकार जीवन, व्यक्ति और समाज से रहा है। एक-एक विचार-पद्धति के स्थान पर इस कविता की वैचारिक विविधता ने भी इसकी समकालीनता को बनाए रखा है। इस तरह कहा जा सकता है कि समकालीन कविता के अनुभव जगत का दायरा विविध और व्यापक है। उसमें आत्मपरकता के अन्तर्गत वैयक्तिक अनुभूतियों का भी एक संसार है। देखना यह है कि इस आपाधापी भरे समय में, दृश्य माध्यमों की चकाचौंध में, साइबर युग में क्या कविता विज्ञापन बनने से बची है? समकालीन कविता को विज्ञापन बनाने की जो बात मुक्तिबोध ने कही थी, कविता क्या अपनी उस ऊँचाई तक पहुँच पाई है? समकालीन कविता की जड़ें जहाँ हैं और जहाँ से इस कविता को निरंतर उर्वरक मिलता रहा है, उसे खंगालने की ज़रूरत है। समकालीन कविता के युवतर कवियों की पीढ़ी इस बात के प्रति कहीं अधिक सजग है। वह अपनी रचनाओं में नकली दुनिया की वास्तविकताओं को उजागर कर रही है। एक वास्तविक संसार और उसकी संवेदनशीलता को निरंतर खोज रही है।

इस दृष्टि से हिमाचल की हिन्दी कविता अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों को पीछे छोड़ते हुए बहुत आगे निकल चुकी है। इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में हिमाचल की हिंदी कविता को राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक पहचान मिली। प्रमुख रूप से कहा जा सकता है कि इसमें सुरेश सेन 'निशांत', अजेय, आत्मा रंजन, कुलदीप शर्मा, मोहन साहिल, प्रदीप सैनी जैसे कवियों

का बहुत योगदान रहा। इनकी कविताएँ हिंदी की तमाम प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होने के साथ-साथ, साहित्यिक हलकों में पाठकों का ध्यान आकर्षित करने में सफल रहीं। इसी अवधि में प्रदीप सैनी को छोड़ बाकियों के काव्य संग्रह प्रकाशित होकर आ गए। इन काव्य संग्रहों को साहित्य जगत में भरपूर सम्मान मिला तथा व्यापक स्तर पर इन पर चर्चाएँ हुई।

'वक्त आया है/कि हम खूब कविताएँ लिखें/ज़िंदगी के बारे में/इतनी कि/कविताओं के हाथ थाम कर/ज़िंदगी के झंझटों में कूद सकें/जीना आसान बने/और कविताओं के लिए बची रहे/थोड़ी-सी जगह/ उस जीवन में।' (इन सपनों को कौन गाएगा—अजेय) अजेय की इन पंक्तियों के मद्देनज़र कह सकते हैं कि आज समय का तेज़ी से बदलता मिज़ाज कविता के नए सौंदर्यशास्त्र की माँग करता है। आज यह मान लेने का वक्त आ गया है कि अच्छी कविता वही है, जो ज़रूरी कविता है। और ज़रूरी कविता वह कविता है, जो कागज़ के पन्नों में दफन होकर ठंडी लाश की तरह ठंडी पड़ी नहीं रहती, बल्कि जनजीवन में प्रवाहमान होती है, हलचल मचाए रहती है। यही कारण है कि 'स्मार्ट लोग' जैसी कविता लिखने वाला कवि यांत्रिकता से ज़्यादा अहमियत मानवीय श्रम को देता है—'डिगे भी हैं/लड़खड़ाए भी/चोटें भी खाईं कितनी ही/पगडंडियाँ गवाह हैं/कुदालियों, गैंतियों/खुदाई मशीनों ने नहीं/कदमों ने ही बनाए हैं—रास्ते! (पगडंडियाँ गवाह हैं—आत्मा रंजन) इतना तो तय है कि अच्छी कविता जीवन निरपेक्ष नहीं हो सकती। यहाँ जीवन से आशय अपने काल के जीवन से भी है। अर्थात् कविता का समय अपने समय से निरपेक्ष नहीं हो सकता। काल से जुड़कर ही वह काल का अतिक्रमण कर सकती है। वस्तुतः अपने काल के प्रश्न, कविता के लिए कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। इस तरह कविता अपने समय के प्रश्नों से कविता के भीतर ही टकराती है। यह कविता का स्वभाव है।

ऐसे ही प्रश्नों से जूझते दिवंगत कवि सुरेश सेन 'निशांत' अपनी एक कविता 'भू-पाणी' में लिखते हैं—'पता नहीं कौन?/पी गया हमारे हिस्से का जल/तड़प रहे हैं पेड़ प्यास से/हाँफ रही है चिड़िया/जल रहा है सारा हरापन/सिर्फ खुश हैं बगुले/सुखती हुई नदी में/तड़पती हुई मछलियों को देख। (वे जो लकड़हारे नहीं हैं—सुरेश सेन 'निशांत') अपने परिवेश के प्रति सुरेश सेन 'निशांत' की इस व्याकुलता से प्रभावित हो सुरेश सेन 'निशांत' को ही केन्द्र में रख वरिष्ठ कवि कुमार कृष्ण लिखते हैं—'वैसे ही आएगा एक दिन कोई जयप्रकाश/और खरीद लेगा तुम्हारा खूबसूरत 'सलाह' (एक गाँव का नाम)/विकास के रजिस्टर में दफ्न हो जाएँगे तुम्हारे—/तमाम खेत-खलिहान, आँगन-अलाव/राजधानी नहीं समझ सकती/तराशे हुए पत्थरों की पीड़ा।' ('उम्मीद का पेड़'—कुमार कृष्ण) हिन्दी की अधिकांश सार्थक कविता सामाजिक न्याय के प्रश्न के प्रति चौकन्नी कविता है और आधुनिक राज्य तथा आधुनिक सभ्यता की मनुष्य विरोधी गतिविधियों के प्रति पर्याप्त सचेत भी है। यह सचेतना तरह-तरह के रूपाकारों में विन्यस्त हुई है। अपनी एक कविता में यादवेन्द्र शर्मा कहते हैं—'मैं आना चाहता हूँ/उन अछूत औरतों से भी क्षमा माँगने/जिन्हें मर्दों ने बदचलन कहा/फिर भी वे बाँटती रहीं/अपनी मेहनत और मुस्कराहटें/मातृत्व और स्नेह से भरीं/मैं एक बालक फिर बैठना चाहता हूँ/उन बहादुर औरतों की स्नेहिल छाया में।' (दुनिया खूबसूरत— यादवेन्द्र शर्मा)

अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी को लिखने के मामले में अधिकतर कवियों ने कविता

की स्वायत्तता और सौन्दर्य की ऐसी किसी भी धारणा को दो टूक शब्दों में अस्वीकार किया है, जो धारणा राजनीतिक और आर्थिक यथास्थितिवाद से मुठभेड़ के रास्ते में रोड़े अटकाती है। तभी तो मोहन साहिल अपनी एक कविता 'केवल हम हैं' में लिखते हैं—हम हैं केवल/जिन्होंने कविता के लिए नहीं चुने/कठिन शब्द/अलंकार/बल्कि चुने जीने के लिए/दुरूह और खाईदार रास्ते/जंगलों और खतरनाक जानवरों से घिरे।'

वर्ष 2010 में दिवंगत साथी सुरेश सेन 'निशांत' के सम्पादकत्व में मध्य प्रदेश के होशंगाबाद से निकलने वाली साहित्यिक पत्रिका 'आकंठ' का 'हिमाचल की समकालीन कविता' पर विशेषांक प्रकाशित होकर आया और इसके दो वर्ष पश्चात् कुल्लू की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था हिमतरु द्वारा प्रकाशित पत्रिका का 'हिमाचल की समकालीन कविता' विशेषांक युवा कवि गणेश गनी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। हिमाचल की समकालीन कविता को समझने के लिए यह दोनों अंक एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ हो सकते हैं। इन दोनों ही विशेषांकों में नब्बे के दशक के कवि से लेकर 2012 तक के हिमाचल के युवा कवि शामिल हैं।

इस बीच युवा कवियों में राष्ट्रीय स्तर पर हिमाचल का प्रतिनिधित्व करते नज़र आये—गणेश गनी। न केवल अपनी कविताओं के माध्यम से ही वह साहित्य क्षेत्र में पहचान बनाने में सफल रहे, अपितु साहित्य-संवाद के बहाने किस्सागोई के माध्यम से कवियों पर टिप्पणियों के लिए भी जाने गए। 'किस्से चलते हैं बिल्ली के पाँव पर' साहित्य संवाद की इनकी पुस्तक जब प्रकाशित होकर आई तो पाठक वर्ग द्वारा इसका व्यापक स्वागत हुआ। इस पुस्तक में हिमाचल के ही नहीं, अपितु देश-भर के इक्कीस कवियों व उनकी कविताओं पर रोचक ढंग से टिप्पणियाँ की गई हैं। देश की सभी प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित होने के पश्चात् सन् 2019 में गणेश गनी का पहला काव्य संग्रह 'वह साँप-सीढ़ी नहीं खेलता' शीर्षक से प्रकाशित होकर आया। हिमाचल की नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक कवियों की भीड़ में गणेश गनी अपनी जादुई भाषा तथा शिल्प और शैली के कारण सबसे अलग पहचाने जा सकते हैं। 'जिन सपनों को लिखा था/तुमने मेरी हथेली पर/उन्हें पाला है मैंने इस कद्र कि/आकर देखो उनके पंख उग आए हैं/अच्छा लगता है/कि प्रेम में होना ही/धरती पर खूबसूरत होना है/इस होने और न होने के बीच/ केवल पलक झपकने जितना फासला है बस।' (पहली प्रेम कविता में देर भली—गणेश गनी)

गणेश गनी के समानांतर एक और महत्त्वपूर्ण कवि इसी समयावधि में हिमाचल में उभरकर आया जिसका नाम है— विक्रम मुसाफिर। इस युवा कवि की कविताओं ने हिमाचल की हिंदी कविता को और समृद्ध किया। 2016 में 'फिर वही सैलाब' शीर्षक से विक्रम मुसाफिर का पहला कविता संग्रह आधार प्रकाशन से प्रकाशित हुआ जिसका नोटिस हिंदी कविता के गंभीर पाठक वर्ग ने संजीदगी से लिया। इन्हीं के समकालीन एक और कवि प्रदीप सैनी का उल्लेख करना यहाँ अनिवार्य है। हालाँकि पुस्तकाकार में प्रदीप सैनी का अभी तक कोई संग्रह प्रकाशित होकर नहीं आया है, परन्तु समकालीन हिन्दी कविता जगत में इस युवा कवि को बड़ी गम्भीरता से लिया जा रहा है। लगभग सभी गम्भीर साहित्यिक पत्रिकाओं व ई-प्लेटफॉर्म पर इनकी कविताएँ प्रकाशित व प्रसारित हो चुकी हैं। जिन पर वरिष्ठ समीक्षकों तथा पाठकों द्वारा गम्भीर टिप्पणियाँ की गई हैं। अपनी मितभाषी काव्यगत विशेषता के चलते

प्रदीप की कविताओं में प्रेम का नैसर्गिक रूप उभरकर आता है। ऐसी ही अपनी एक कविता 'तुम्हें चूमना' में प्रदीप लिखते हैं—'इस सब के बीच/मूक होकर भी/कितना मुखर है तुम्हें चूमना/बता देता है बहुत कुछ/और पारदर्शी इतना/देख सकते हैं हम/एक दूसरे के भीतर का सच/चूमने में शामिल सिर्फ देह ही नहीं होती।' यहाँ प्रेम कवि होने का आशय यह नहीं कि वे अपने समय की चुनौतियों से भाग रहे हों। अपितु आज के समय में जो घट रहा है, जैसा घट रहा है प्रदीप उसे छोड़ते नहीं, अपितु उससे वाबस्ता होकर गलत के प्रति पुरजोर प्रतिरोध अपनी कविताओं के माध्यम से करते हैं।

इस कड़ी में और भी ऐसे अनेकों नाम हैं, जो बेहतरीन कविताएँ लिख रहे है। इनमें प्रमुख नाम हैं नवनीत शर्मा, जो हिन्दी कविता के साथ-साथ हिन्दी ग़ज़ल में भी महत्त्वपूर्ण दखल रखते हैं तथा ओम भारद्वाज, राजीव कुमार त्रिगर्ती, डॉ. सत्यनारायण 'स्नही', दिनेश शर्मा, डॉ. पान सिंह, निरंजन देव शर्मा, अनन्त 'आलोक', मनोज चैहान, पवन चैहान, विजय विशाल, सतीश शर्मा, दीपक भारद्वाज, प्रत्यूष शर्मा आदि जिनकी कविताओं व कविता संग्रहों का हिमाचल ही नहीं अपितु पूरे हिन्दी काव्य जगत ने भरपूर स्वागत किया है। इनके अतिरिक्त शेर सिंह मेरुपा, विवेक भारद्वाज, अंकित बेरी, पवन ठाकुर, बलवंत नीब, अनिल महंत, एस. अतुल अंशुमाली, दीपक शर्मा जैसे अनेक युवा कवि इस समय हिमाचल में हिन्दी कविता का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

इन कवियों द्वारा वर्तमान समय में हिमाचल में लिखी जा रही कविता पर बात करने से पहले यहाँ के सामाजिक परिदृश्य पर नज़र डालना ज़रूरी है। यह सही है कि मेहनतकश आदमी के जीवन के दुःख-दर्द और संघर्ष को अपनी कविता का विषय बनाना आम बात हो गई है। मगर यह भी उतना ही सच है कि उस मेहनतकश आदमी के जीवन के यथार्थ से अधिकतर कवियों के अपने यथार्थ का सीधा सम्बन्ध नहीं है। अधिकतर कवि वही लिख रहा है जो वह देख रहा है और जिसके प्रति उसके मन में सहानुभूति और प्रतिबद्धता का भाव है। मेहनतकश लोगों के साथ उसका अपना जुड़ाव केवल वैचारिक है या वह स्वयं भी अपने को उसका हिस्सा मान रहा है यह प्रश्न अनुत्तरित है। शायद हिन्दी साहित्य में मुक्तिबोध ने पहली बार अपनी कविता में इस मौखिक सहानुभूति को अपर्याप्त समझकर अपने आपसे यह सवाल किया कि उन साधारण मेहनतकश लोगों से वह कितना दूर है, या कितना पास है। अपनी कविता में वे कहते हैं—'इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए/पूरी दुनिया साफ करने के लिए मेहतर चाहिए/वह मेहतर मैं हो नहीं पाता/पर, रोज़ कोई भीतर चिल्लाता है/कोई काम बुरा नहीं/बशर्ते कि आदमी खरा हो/फिर भी मैं उस ओर अपने को ढो नहीं पाता।' इस बात का ज़िक्र इसलिए ज़रूरी है कि हिमाचल के अधिकतर कवियों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि मध्यवर्ग से है, जिसका उल्लेख मैंने इस आलेख के आरम्भ में किया है। अगर मध्यवर्ग का कवि अपने को इस परिवर्तन के लिए तैयार नहीं करेगा, जिसके बारे मुक्तिबोध कह रहे हैं, तो वह वापस अपने को उसी मध्यवर्ग के खोल में बन्द कर लेगा जहाँ अभिजात समाज के अनुभव ही उसके लिए प्रेरणा बनकर उपलब्ध रहेंगे।

वर्तमान समय में हिमाचल में विपुल मात्रा में लिखी जा रही कविताओं को पढ़ते हुए कई बार ऐसा भी लगता है। पिछले आठ-दस वर्षों के साहित्यिक परिदृश्य को देखते हुए ऐसा लगता है कि साहित्य के क्षेत्र में सबसे ज़्यादा खेती कविता की ही हो रही है। जिस

मात्रा में कविताएँ लिखी जा रही हैं उससे तो बहुत उर्वरता नज़र आती है। स्थानीय स्तर पर भाषा विभाग, अकादमी या किसी संस्था द्वारा आयोजित कवि सम्मेलन में कवियों की खूब भीड़ नज़र आती है। हर तीसरा कवि अपनी नई काव्य पुस्तक के साथ उपस्थित रहता है। लेकिन इस भीड़ में वास्तविक (जैनुईन) कवि कितने होते हैं यह यक्ष प्रश्न है। हो सकता है कि कुछ लोग इस परिस्थिति पर कहें कि 'क्वैंटिटी' से ही 'क्वालिटि' निकलती है, मगर इस भीड़ में 'जैनुईन' कवि के खोने का अंदेशा हमेशा बना रहता है। कवियों की इस भीड़ के सामने कविता की स्थिति अत्यंत विचित्र हो गई है। उसे पाठक और श्रोता नहीं मिल रहे हैं। धड़ाधड़ जैसे-तैसे कविता की किताबें छप रही हैं मगर खरीददार नहीं मिल रहे। अगर सरकारी खरीद न हो तो वे ऐसे ही पड़ी रहती हैं। पाठकों की विशुद्ध कमी के बावजूद कवियों को एक से बढ़कर एक पुरस्कार मिल रहे हैं। सच्ची बात तो यह है कि कविता के प्रमुख पाठक कवि ही हैं। वे ही एक-दूसरे की कविताएँ पढ़ते हैं, उन पर बात करते हैं और कभी-कभी लिखते भी हैं। मगर वह साधारण पाठक जो साहित्यिक समुदाय का हिस्सा नहीं है लगातार सिकुड़ता जा रहा है। साधारण पाठक से मेरा अभिप्राय उस पाठकवर्ग से है जो मनुष्य और उसकी संस्कृति में दिलचस्पी के चलते कविता पढ़ता है। इसी साधारण पाठक के पास पहुँचकर कविता सचमुच सार्थक होती है, क्योंकि वह उसकी चेतना का हिस्सा बनती है। आज चिन्ता की बात यही है कि वही साधारण पाठक समुदाय कविता या साहित्य से दूर होता जा रहा है। उसमें कविता पढ़ने या कविता सुनने की इच्छा, ज़रूरत और आदत घट रही है।

कहने का अभिप्राय यह है कि साहित्यिक समुदाय के बाहर के व्यापक समाज में कविता के लिए जगह धीरे-धीरे कम होती जा रही है। व्यापक समाज से कविता के रिश्ते के टूटने का अनुभव अनेक कवियों को हो रहा है। जो कवि इस संकट के बारे में सचमुच सजग हैं, वे रचना के स्तर पर उससे जूझ भी रहे हैं। ऐसे कवि अपनी कविताओं में समाज से कविता के वास्तविक और सम्भावित सम्बन्धों की खोज और पहचान कर रहे हैं। इनसे इतर हिमाचल में बहुत बड़ी तादाद में ऐसे कवि भी हैं, जिन्हें इन सब बातों से दूर तक का कोई लेना-देना नहीं है। वे अपनी रौ में लिखे जा रहे हैं। उनमें कोई उपदेश को तो कोई नीति वचन को कविता का मूल-मंत्र मान कर उपदेशात्मक कविताएँ लिख रहे हैं। उनके अनुसार जितना अधिक उपदेश, उतनी बढ़िया कविता। कई राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित अपने उद्गारों को व्यक्त करने को कविता समझ रहा है तो कोई प्रकृति के सपाट चित्रण को। मुझे लगता है आज कविता को पाठक से ज़्यादा खतरा इन शौकिया कवियों से है, जो न साहित्य पढ़ते हैं और न समाज की वास्तविकताओं से जिनका सीधा नाता है। इन्हें बस कुछ लिखना है और लिखे जा रहे हैं। मज़ेदार बात यह कि इस ऊटपटांग लिखे को छापने के लिए कई प्लेटफॉर्म उपलब्ध हैं। जिनके अपने अलग एजेण्डे हैं। जब हिमाचल में रहते हुए कोई कवि यह लिखता है—'कृष्ण जी तुम कब आओगे/जब गऊएँ कटेंगी तब आओगे।' इसी तरह एक और बानगी देखिए—'अतीत भी दुःखद, वर्तमान भी दुःखद/भविष्य भी दिखता अंधेरा है/कवि भी दुःखी, कल्पना भी दुःखद/दुःखी यह देश मेरा है।' क्या इन्हें कविता कहा जा सकता है? ऐसी अनेकों रचनाएँ जब अपने आसपास सुनने पढ़ने को मिलती हैं तो सचमुच बहुत निराशा होती है।

मगर हिमाचल के सुदूर क्षेत्र चम्बा से रोज़ी-रोटी कमाने गया एक युवा कवि अशोक

कुमार दिल्ली में रहते हुए यह लिखता है—'कभी-कभी चाहता हूँ—/कि चैत की कोई खूबसूरत दोपहर को/बुरांश से लदा हुआ एक घना जंगल/और बान का कोई पुराना पेड़.../कि जिससे देर तक पीठ टिकाकर/मैं बाँसुरी पर कोई धुन बजाऊँ/और मैं चाहता हूँ—/कि तुम मुझे उस प्रेमी की तरह याद करो/जो अपने रेवड़ को लेकर/कार्तिक में चला गया था/चैत में वापिस लौटने का वादा करके।' तो सचमुच बहुत खुशी होती है कि प्रौढ़ ही नहीं हिमाचल के अनेक युवा कवि बहुत सुन्दर, गम्भीर व मार्मिक कविताएँ रच रहे हैं। इस बात की तस्दीक होती है अपनी तेज़-तर्रार व तीखी टिप्पणियों के लिए चर्चित कवि गणेश गनी के इस वाक्य से जो उन्होंने पिछले वर्ष हिमतरु पत्रिका के युवा रचनाशीलता के कविता अंक के मुखपृष्ठ पर लिखा है—'कविता पर कोई संकट नहीं।' देश भर से चयनित 75 युवा कवियों में से हिमाचल के 17 युवा कवि इस अंक में शामिल हैं। जिन्हें पढ़ते हुए हिमाचल की हिन्दी कविता के भविष्य का अनुमान लगाया जा सकता है। हिमाचल में बहुत से ऐसे और भी युवा कवि अच्छी कविताएँ लिख रहे हैं, जो हिमतरू के इस कविता विशेषांक में शामिल नहीं हो सके हैं। इन समकालीन युवा कवियों की कविताओं से गुज़रते हुए यह संतोष अवश्य मिलता है कि इनकी काव्य चेतना देश और काल की परिस्थितियों पर निरंतर चौकस नज़र रखे हुए है। भाषा और शिल्प के स्तर पर प्रयोगशील इन युवा कवियों से हिमाचल की हिंदी कविता के बेहतर भविष्य की उम्मीद तो की ही जा सकती है।

[गाँव व डाक. चैलचौक, ज़िला मण्डी, हि.प्र. 175028]

मो. 94181 23571

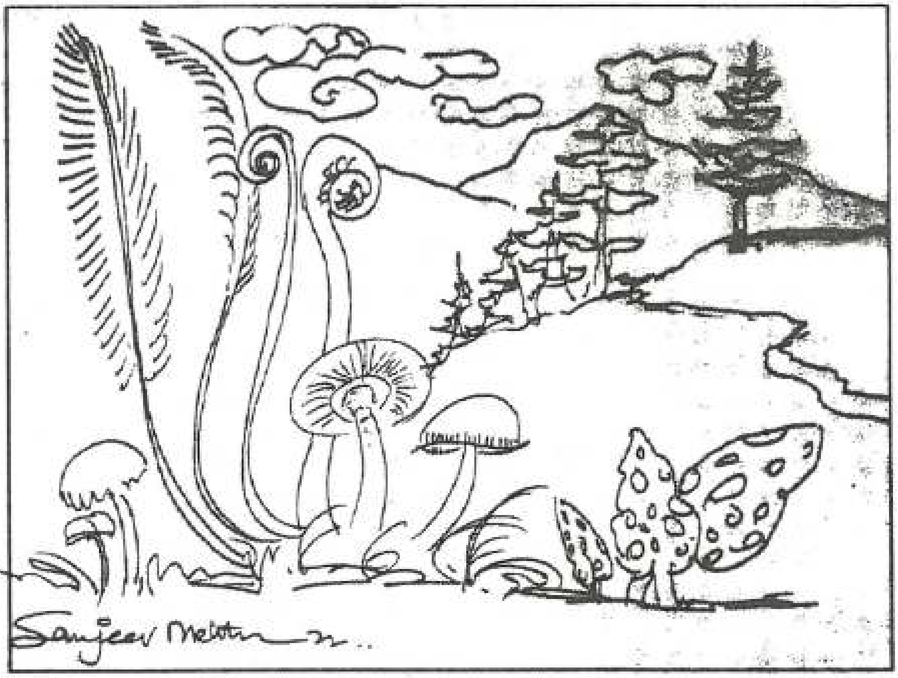

दो कविताएँ

❑ ज. स्वामीनाथन्

पुराना रिश्ता

परबत की धार पर बाहें फैलाये खड़ा है
जैसे एक दिन
बादलों के साथ आकाश में उड़ जायेगा जंगल
कहते हैं पहले कभी
कोकूनाले तक उतरे थे ये देवदार
और आसमान को ले आये थे इतने पास
कि रात को तारे जुगनू से
गाँव में बिचरते थे
अब तो बस
जब मक्की तैयार होती है
तब एक सुसरा रीछ
पास से उतरता है
छापेमार की तरह बरबादी मचाता है
अजी क्या तमंचे, क्या दुनाली बंदूक
सभी फेल हो गये महाराज
बस, अपने ढंग का एक ही, बूढ़ा खुर्राट
न जाने कहाँ रह गया इस साल
1994

गाँव का झल्ला

हम मानुस की कोई जात नहीं महाराज
जैसे, कौवा कौवा होता है, सुग्गा, सुग्गा
और ये छितरी पूँछ वाले अबाबील अबाबील
तीर की तरह ढाक से घाटी में उतरता बाज, बाज
शेर शेर होता है, अकेला चलता है

सियार, सियार
बंदर सो बंदर, और कगार से कगार पर
कूद जाने वाला काकड़ काकड़
जानवर तो जानवर सही
वनस्पति भी अपनी-अपनी जात के होते हैं
कैल कैल है, दयार दयार
मगर हम मानुस की कोई जात नहीं
आप समझे न
मेरा मतलब इससे नहीं कि ये मंगत कोली है
मैं राजपूत
और वह जो पगडंडी पर छड़ी टेकता
लंगड़ाता चला आ रहा है इधर
बामन है, गाँव का पंडत
और आप, आप की क्या कहें
आप तो पढ़े लिखे हो महाराज
समझे न आप, हम मानुस की कोई जात नहीं
हम तो बस, यूँ समझें आप
कि मुखौटे हैं, मुखौटे
किसी के पीछे कौवा छुपा है
तो किसी के पीछे सुग्गा
सियार भतेरे, भतेरे बंदर
और सब बच्चे काकड़ काकड़ या हरिन, क्यों महाराज
शेर कोई कोई, भेड़िये अनेक
वैसे कुछ ऐसे भी, जिन की आँखों में कोआ भी देख लो
सियार भी, भेड़िया भी
मगर ज़्यादातर मवेशी
इधर उधर सींगें उछाल / इतराते हैं
फिर जिधर को चला दो, चल देते हैं
लेकिन कभी-कभी कोई ऐसा भी टकराता है
जिसके मुखौटे के पीछे, जंगल का जंगल लहराता है
और आकाश का विस्तार
आँखों से झरने बरसते हैं, और ओंठ यों फैलते हैं
जैसे घाटी में बिछी धूप
मगर वह हमारी जात का नहीं
देखो न मंदर की सीढ़ी पर कब से बैठा है
सूरज को तकता, ये हमारे गाँव का झल्ला
1994

दो कविताएँ

❑ वरयाम सिंह

दोस्त के घर में

दोस्त के घर में नींद जल्दी आती है
पर दोस्त का प्यार है कि सोने नहीं देता
इतने दिनों बाद क्यों आये की सज़ा
देता है दोस्त
सोने नहीं देती दोस्त की पुस्तकें
जगाये रखती हैं मेरे लालच को
एक को उठाता हूँ उससे पहले
हाथों में आ जाती है, दूसरी
इस तरह खो देता हूँ अपनी नींद
भूल जाता हूँ, पकड़नी है सुबह की पहली बस।

घर का काम-काज पूरा कर
विस्तार से सुनना चाहती है
दोस्त की पत्नी–
बच्चे की पढ़ाई और भाभी की सेहत
प्रमोशन तो मिल गई होगी
कैसे चल रही है गाँव की खेती
दिल्ली में मकान तो बना लिया होगा
कैसे कहूँ–ओ भाभी
दुनियादारी के मामले में मुझसे ज़्यादा न पूछ!

अच्छा है कि सो रहे हैं दोस्त के बेटे
'अंकल', कविता लिखना छोड़ दिया है क्या ?
पूछा था उन्होंने पिछली बार।
पता नहीं यह प्रश्न था या उलाहना

या इस घर में मेरे बारे जो बातें होती हैं उनकी अनुगूँज
तब मैं उन्हें यह कह नहीं पाया था—
बच्चो, अब मैं कविता लिखने योग्य रहा नहीं
कवि के रूप में जो आस्थाएँ ज़िंदा रख सकती थीं मुझे
मैं उन्हें खो चुका हूँ
आस्थावान बने रह सकने की क्षमता में ही
निहित है कविता—ऐसा कहना है मेरे प्रिय कवि का
जब पुनः प्राप्त कर लूँगा वह क्षमता
तभी शायद लिख सकूँगा कम-अधिक अच्छी कविता
और तब तक ऐसे ही चलेगा।
1994

मित्र विहीन हो जाऊँगा जब

एक दिन मैं देखूँगा
कि मैं मित्र विहीन हो गया हूँ पूरी तरह
जो आज मित्र हैं
नज़र आएँगे स्वार्थों के घिनौने पुतले
व्यापारी जेबकतरे
मुझे अच्छा नहीं लगेगा उनका बात करने का तरीका
अनौपचारिक संबोधन भी गहरा षड्यंत्र लगेगा

भाग खड़ा हूँगा हर तरह के
स्नेह की गंध छोड़ते शब्दों से

खाने पर बुलाएगा पुराना दोस्त
मुझे लगेगा ज़रूर अपने बेटे की सिफारिश करने के लिए कहेगा
भेंट करेगा मफलर या शॉल

अन्याय की बात करेगा जो दोस्त
मुझे लगेगा ज़रूर चिल्ला रहा है
अपना हिस्सा न मिलने पर।

सुनाने लगेगा कवि मित्र
अपनी हाल ही में लिखी कोई कविता
मुझे लगेगा जिस पर उसे स्वयं विश्वास नहीं
चाहता है मैं उस पर विश्वास करूँ

बेटे के मेडिकल में दाखिला मिलने की खुशी में
दावत पर बुलाएगा दोस्त
मुझे लगेगा-स्साला मुझे बताना चाहता है
छः बरस तक घसीट ले जा सको यह शरीर
तो उसके बेटे के क्लीनिक में
शरण मिल जाएगी तुम्हारी अस्वस्थ काया को
सस्ते में इलाज करा देगा
या बताना चाहता है
बेटी के लिए दूर नहीं
अपने ही शहर में वर मिल जायेगा
इसके लिए ठीक से बचत करना शुरू करो अभी से

शुरू करना होगा खोल बनाना अभी से
घुस जाऊँगा उसके भीतर
बाहर मित्रताओं की दुनिया होगी
भीतर संदेहों का संसार।

1994

जन्म 1948, पैतृक गाँव बाहू, जिला कुल्लू, हि.प्र.
[सराज कॉलोनी, बंजार, जिला कुल्लू, हि.प्र.]
मो. 98106 47981

दो कविताएँ

❑ कुमार कृष्ण

कविता और तमाशागर

मैंने अपनी एक कविता में
अनगिनत घर बो दिए
आदमियों की बेहतरीन फसल की प्रतीक्षा में
मज़बूत पेड़ों की प्रतीक्षा में
एक कविता में बो डाले बेशुमार जंगल
खतरे के निशान को पार करती हुई
तमाम नदियों को रोकने की कोशिश को
मैंने एक कविता में

मैं उस कविता को लेकर
स्कूली बच्चों के पास गया
उन्होंने कहा—
आदत पड़ चुकी है हमें देश-भक्ति के गीत गाने की
तुम अपनी कविता किसी तमाशागर को दे दो।

तमाशागर पगड़ी बाँध रहा था
अब मैं उसके पास पहुँचा
मेरी कविता को सुनकर बोला—
मुझे ठीक करना है अपना फटा हुआ डमरू
तुम एक काम करो
आज मेरे साथ चलो और देखो
कैसे खिंचे चले आते हैं लोग
वैसे मैं हर रोज़ एक-सी भाषा बोलता हूँ
बहुत कुछ एक-सा है तुम्हारा और मेरा काम
हम दोनों करते हैं भाषा का धंधा
एक भाषा करती है लोगों को अंधा
दूसरी देती लोगों को कंधा

यह दूसरी बात है कि हमारे शब्दों पर बजने वाली
तालियों की गरमाहट कम हो गई है
हम दोनों इसके बारे में
मिलकर सोचेंगे किसी एक दिन
तुम गलत समय पर आए हो
यह दफ्तरों में
ठण्डे भोजन को पेट के सुपुर्द करने का वक्त है
मुझे इसी मौके के लिए डमरू तैयार करना है।
1992

अदरक की गंध वाला कवि

कितना अच्छा होता—
कविता की रोटी खाने वाले भी सोचते
कुछ कुछ सुरेश सेन की तरह
ठीक ही कहा था उस दिन तुमने—
एक गम्भीर विधा है कविता
जिसे लिख रहे हैं कुछ अगम्भीर लोग
शायद थोड़ा बहुत सोचते हैं उसके बारे में आत्माराम
खेलते हुए बच्चों के मार्फत
दिवंगत माँ की चोलू-बास्केट के साथ अजेय
या फिर गांधी के काले पाँव, टूटे चश्मे से कुल राजीव
उस दिन चार घण्टों की उपस्थिति के बाद
जान गया मैं पूरी तरह
ठीक ही कहते हो तुम—'कुछ थे जो कवि थे'
ठीक ही कहते हो—
'क्या कविता के लय भर में आने से
समस्याएँ हल हो जाएँगी कविता की
क्या कविता को लय में देख
भूल जाएंगे अपने दुःख वे सभी
जो छटनी की तलवार से हुए हैं हताहत
जिनकी ओर पीठ किए खड़े थे सभी कवि
जब बैठे थे वे धरने पर
प्रिय भाई भूल चुके हैं लोग पूरी तरह—
कविता है एक सामाजिक संवाद
वह है पृथ्वी का राग, शब्दों का सपना
धरती की धरोहर, ज़िंदगी का बीजगणित

दिलो-दानिश की शरारत
इनसानियत की अध्यापिका, संवेदना का संदूक
वह है आग और राग का बादल
अमर्ष और संघर्ष का दरिया
मुक्तिबोध का चाँद, ऋतुराज का अबेकस
केदार का बाघ, सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र
वह है खुरों की तकलीफ, मनुष्यता का दुःख
रात में हारमोनियम
वहाँ नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द
वह जानती है बनाना अच्छा आदमी
अच्छा आदमी जो मरता है
आधी उम्र में अनगिनत सपनों के साथ
मैंने रास्ते से गुज़रते हुए ही देखा है तुम्हारा सुन्दरनगर
आखिर क्यों कहते हैं उसे सुन्दरनगर
आखिर क्या है उस नगर में सुन्दर
तुम्हारे सुन्दरनगर के बारे में मैं नहीं जानता ज़्यादा
पर इतना ज़रूर जानता हूँ —
जैसे टूट-टूट कर पहुँच रहा है लेदा राजधानी तक
वैसे ही आएगा एक दिन कोई जयप्रकाश
और खरीद लेगा तुम्हारा खूबसूरत 'सलाह'
विकास के रजिस्टर में दफ्न हो जाएँगे तुम्हारे
तमाम खेत-खलिहान, आँगन-अलाव
राजधानी नहीं समझ सकती
तराशे हुए पत्थरों की पीड़ा
नहीं जानती राजधानी
रोता है कितनी बार लेदा का पहाड़
लोग खिंचवा रहे हैं अपनी तस्वीरें
खूबसूरत इमारतों के साथ
हो रहे हैं खुश उनको देखकर हर बार
कितना अच्छा होता—
तस्वीरें खिंचवाने वाले लोग समझ पाते एक बार
लेदा के पहाड़ की तकलीफ
समझ पाते अदरक की गंध वाले कवि का गीत
2015

पैतृक गाँव नागड़ी (शोघी), ज़िला शिमला, हि.प्र.
[ई-4/8, डी.एल.एफ. वैली, पंचकूला-134105]
मो. 94181 97490

दो कविताएँ

❑ श्रीनिवास श्रीकांत

शहर नहीं मरा...

बर्फ़ में दफ़नाये जाने के बाद भी
शहर नहीं मरा
गाया प्रेत-पिशाचों ने मंगल
कूदे खिड़कियों से बेनक़ाब आदमी
पकड़ने उन बेहया आवाज़ों को
उड़े बाज़ तिलस्मी जंगलों की दिशा में

जंगले
रेलिंग
हवेलियाँ
खड़े रहे
ध्यानस्थ खड़े रहे

देवदारुओं से लिपटी
फिरंगियों के पाप-प्रेम की
खिलखिलाहटें पगलायीं

बुलाहटें कल शाम के इतिहास की
माथा फोड़ती रहीं
पुराने चंडूखानों की चौखटों पर
और आते-जाते अजनबी का बाज़ू पकड़
मौत की घाटियों में स्किइंग करती रही
झबरी आवारा हवा।
2007

जानवर और कन्यायें...

मस्तक से गुज़रते हैं
मांस के सैलाब
और अश्लील एकान्त
अपनी पीठ खुजलाते
देते हैं आसमान को गाली

शहर का ट्रेफ़िक रुक जाता है
क्योंकि भाग आता है चिड़ियाघर से
पाँच मुखों वाला एक जानवर
शामिल हो जाता है
स्कूल जाती कन्याओं के समूह में

कन्याएँ
जो यह नहीं जानतीं
कि उनका रास्ता
जो घर से स्कूल तक जाता था
क्यों टूट गया है

रास्ते टूटते हैं
और कन्याएँ उदास हैं

कन्याओं की उदासी तोड़ने के लिये
मेरे पास कुछ नहीं
न कमरसीढ़ियाँ उतरते उपन्यास
और न आकाश के नीलम दायरे
मेरे पास हैं कुछ दिशायें
जिन्हें मैंने
अनुभव-झोलों में बंद करके
एक ऐसी खूँटी से लटकाया है
जो कभी है
कभी नहीं है

अनिल राकेशी की कविता

यह तो मैंने सोचा भी नहीं था
इस काली मरार[1] सड़क में से फूट पड़ेंगे
जेठ की चटख दोपहरी में
साल के फूल और आम की कोंपलें
तुम परीकथा की वह राजकुमारी नहीं हो
जो हंसे तो फूल झड़ें
रोए तो मोती
मैं भी उम्र का वह पड़ाव
पीछे छोड़ आया हूँ कब का
जहाँ तुम्हारी आँखों में खिलता
बे मौसम बसन्त
नशे में डुबो दे
फिर किस सिद्ध ने मंत्रित कर
धूप की चुटकी यहाँ फेंक दी
कि इस बेरहम नागिन ने
लू की लपलपाती जीभ अंदर खींच ली है
और खानदानी मालिन के अंदाज़ में
फलों की टोकरी लिए
चापलूसी में खड़ी है
मुझसे तारीफ के
दो बोलों के इंतज़ार में
गंध के बादल ने घेर लिया है मुझे
इस तरह कि आँख, कान, हाथ सब
गंधग्राही हो गए हैं
लड़कपन में एक बार
धुँध में खो गया था
तो ग्वालों की बाँसुरी
रास्ते पर खींच लाई थी

1. शवदाह से बची जली हुई काली लकड़ी (लोक भाषा का शब्द)

मगर आज तो रात फूलों की टोकरी लिए
सामने खड़ी है
मेरे हाथों के बीच पसीजती तुम्हारी हथेली
और इस सड़क के बीच
कोई गुप्त समझौता है
जिसकी मियाद

चार नम्बर लोकल के आने तक है
बेपनाह इमारतों और अंतहीन सड़कों के इस जंगल में
एक लम्हे के एकांत में
अकेलेपन का टूटना
एक घटना बन जाता है
मगर सड़क पर उतरने से पहले
हथेली का पसीना पोंछना मत भूलना

बस के दरवाज़े के हैंडिल
और पसीजी हथेली का कोई मेल नहीं है
और फिसलकर गिरने की कीमत
टाँग से लेकर जाँघ तक
कुछ भी हो सकती है
और फिर ये तारकोल की सड़क भी बहुत देर तक
ऐसी ही अनुकूल नहीं रहती

1987

जन्म 1938, पैतृक गाँव नाहन, जिला सिरमौर, हि.प्र.

[राणा कॉटेज, लोअर जाखू, शिमला-171001]

मो. 94181 07560

दो कविताएँ

❑ मधुकर भारती

समागम में

समागम में प्रस्तुत हुआ मेरा प्रस्ताव
यह धर्म सब करने समाप्त
इन भगवानों को करो किनारे
आदमी काट रहा है
आदमी का गला

समागम ने धर्म और भगवान के पक्ष में
बड़े-बड़े तर्क दिए और
कर दिया मेरा प्रस्ताव अस्वीकार!

समागम में प्रस्तुत हुआ मेरा प्रस्ताव
यह युद्ध करने सब समाप्त
यह सीमाएँ देनी सब मिटा
आदमी ले रहा है
आदमी की जान

समागम ने अपनी ज़मीन की रक्षा के पक्ष में
इतिहास के पुलिन्दे सामने पटके और
कर दिया मेरा प्रस्ताव अस्वीकार!

समागम में प्रस्तुत हुआ मेरा प्रस्ताव
यह जीव हत्या है करनी बन्द
जीवों को बराबर है जीने का हक
देवताओं ने कभी नहीं माँगी बलि

समागम ने सामूहिक बर्बरता के पक्ष में
भारी ग्रंथशास्त्र मुझे दिखाए और
कर दिया मेरा प्रस्ताव अस्वीकार!

समागम में प्रस्तुत हुआ मेरा प्रस्ताव
समागम की कसौटी पर परखी जाएँ मेरी कविताएँ
बहस हो इनकी सार्थकता पर

उस दिन समागम में उपस्थिति रही शून्य
मैं कविताएँ उलटता-पलटता रहा अकेला!
मैं अब भी समागम में हूँ
मेरे प्रस्ताव अब भी प्रस्तुत होते हैं वहाँ
इस फड़फड़ाते पक्षी का ढाई आखर
कभी न कभी
सुनेगी दुनिया!
कभी न कभी मोटे तर्क
इतिहास के पुलिन्दे, भारी ग्रंथशास्त्र
गिरेंगे सड़े हुए पेड़ों की तरह!
1989

शुट्टियाँ

प्रफुल्ल मर्दों का टोला
चुनता है पहाड़ी फूल
पंखुड़ी चक्र में लावण्य छिपाए
अनायास और अनचाहे
गिरते हैं मदोन्मत्त हाथों में
इन्द्रधनुष में रिक्त और व्याकुल
अपने स्थान पर स्थित रहता है काण्डा[1]

रंगों का गुलदस्ता संभाले
टोला उतरा है फुलाईच[2] में
एकबारगी देवता की नज़र-भर
बाँटता है फेंकता है
रात भर पीता है नाचता है मसलता है
खेत में खलिहान में
घर के पिछवाड़े

झाड़ी की ओट
घुप्प अँधेरे में
निर्ममता से रौंदता हुआ फूलों को
कण्डे पर के पहाड़ी फूल हैं शुट्टियाँ
फुलैच हो या बीहा[3]
बसंत या शरद
चेतन में या अवचेतन में

चाहते हुए या न चाहते हुए
वीरांगनाएँ युद्ध करती हैं सिसकियों से
घर को घर बनाए रखते हुए
बीज को हवा में उछालकर
ज़मीन में गर्भस्थ करते हुए
चिखड़ू[4] से फसल का आधार बनाते हुए
तकली पर के पसीने को
दोहड़ू[5] में प्रतिफलित करते हुए
सड़कों पर पत्थर कूटते हुए
हाथों में उभरे छालों से बेलचे चलाते हुए
कोचाओं[6] की वासनाएँ झेलते हुए
अनवरत युद्धरत हैं वीरांगनाएँ

फिल्म में दिखता है अलकापुरी का उपवन
अप्सराओं से प्रेमालाप करते कामी यक्ष
भवनों में अक्षय धनराशि सजाए
किन्नरों का स्वर्गिक संगीत
भोजपत्रों से सजे गन्धर्वों का मादक नृत्य
और दिखता है झूलते रथ पर
इठलाता हुआ गर्वित देवता
कौन देखता है डब-डब[7] के बहाने
मरे जानवरों-सी खिंचती शुट्टियाँ?
कागज़ी नोटों में तय होती उनकी 'इज्ज़त'?

उत्तुंग शिखरों से फिसलते हुए
चूल्हे के पास खेतों में
सड़कों पर जंगलों में
युद्धरत वीरांगनाओं की दबी हुई सिसकियाँ?
कंडे पर के पहाड़ी फूल हैं शुट्टियाँ

दोहड़ू में खुले रहस्य-सा लावण्य छिपाए
अधखिले इन्द्रधनुष जैसे
अनायास और अनचाहे
गिरते हुए मदमत्त हाथों में
इठलाता रहता है देवता
फुलाईच मनाता है
प्रफुल्ल मर्दों का टोला।

2000

1. **कण्डा** : पहाड़ की चोटी पर खुली जगह जहाँ रंग-बिरंगे पहाड़ी फूल उगते हैं।
2. **फुलाईच** : किन्नौर में अगस्त-सितम्बर मास में मनाया जाने वाला फूलों का त्यौहार जिसमें गाँव के पुरुष टोली बनाकर चोटी पर जाते हैं और वहाँ के रंग-बिरंगे फूल एकत्र कर नाचते-गाते हुए गाँव वापस आते हैं। वहाँ स्थानीय देवता के रथ पर फूल चढ़ाने के बाद, उन्हें मित्रों-सम्बन्धियों में बाँटते हैं तथा रात भर खूब नाचते-गाते रहते हैं।
3. **बीहा** : एक त्यौहार, जिसमें खूब नाच-गाना चलता है।
4. **चिखड़ू** : फलस की गोड़ाई का एक नुकीला अस्त्र।
5. **दोहड़ू** : ऊन का शालनुमा वस्त्र जिसे किन्नीरी लोग स्वयं तैयार करते हैं। इसमें अधिकतर योगदान स्त्रियों का होता है।
6. **कोचा** : किन्नौर से बाहर के व्यक्ति को स्थानीय बोली में कोचा कहा जाता है।
7. **डब-डब** : किन्नौर की एक प्राचीन विवाह-प्रथा जिसमें लड़की को बलात उठाकर अपहृत किया जाता है।

जन्म 1950, देहांत 2015, पैतृक गाँव रियोग, जिला शिमला, हि.प्र.

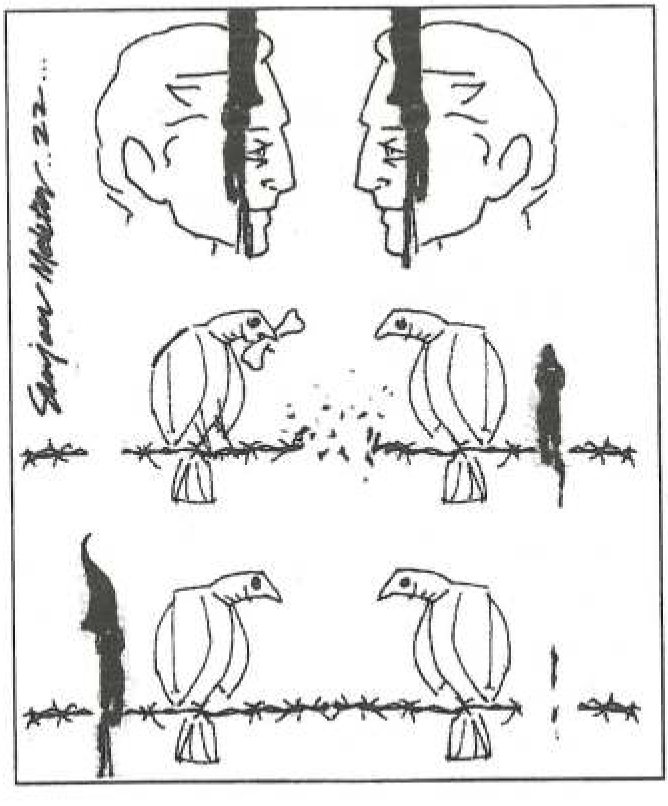

दो कविताएँ

❑ पद्‌म गुप्त अमिताभ

एक शहर की मौत–एक

सुरमई रंगों में ढल जाते हैं
जब सूर्यास्त के रंग
गाढ़े होते आकाश के तले होती है
रोशनियों की चपल क्रीड़ा

प्रजापति की कामुक भावनाओं-सी
टूट जाती हैं घाटी की मर्यादाएँ
एक गोपनीय मधुचर्या में
डूब जाता है सम्पूर्ण जनपद

नगर में घूमने लगते हैं बैताल
तलाशते हैं सूनी पगडंडियों में अतीत
रातों को देर से लौटते फिरंगी घुड़सवार
मन्दिर आँखों में नींद लिए
मेमों को लेकर भागते रिक्शे
यू.एस. क्लब के रात्रि भोज
लार्ड कर्ज़न के आमोद के किस्से

किन आख्यानों में खो गया इतिहास
जब सजता था गौरांग प्रभुओं का दरबार
धरा पर थिरकती रम्भाओं के रोमांच से
काँपते थे आकाश के स्वर्ण कपाट
विक्टोरियन नैतिकता की तरह भूल जाते हैं लोग
बक[1] का ज़िक्र
और शेरगिल का बीता कल

गेटी की जर्जर दीवारों से
मिट जाती है किपलिंग की याद
धुँध भरी रातों में रौशनियाँ
ढूँढती हैं घंटियों की आवाज़
बर्फ़ की परवाज़
मर जाती है चाँदनी के ज़ेहन में
जाने किस चमत्कार की प्रतीक्षा में
खड़ी रहती हैं सेंट माइकेल की दीवारें

छिन्न मस्तक देवदार
राह दे देते हैं तंग गलियों को
पगडंडियों में सज जाते हैं मीना बाज़ार
लोगों के मन की तरह बदल जाते हैं मौसम
शहर को दबोच लेता है कंकरीट का दैत्य
मानूस यादें हो जाती हैं हताश
नगर की पीठ पर उग आते हैं व्रण
एक वीभत्स रोग में
धीरे-धीरे मर जाता है शहर!
2007

दो

मन के बीहड़ जंगल में
धराशायी हो जाते हैं
आशा के सभी घुड़सवार

मायावी घोड़ों पर सवार होकर
तारे गुज़रते हैं अन्धकार की घाटियों से
भ्रमित दिशाओं को पीठ पर लादे
फिरते हैं अन्धे दिक्पाल
भीतर काँपते हैं विज़न।
फिर अनेक वृक्ष रोपकर भी
वन महोत्सव नहीं भर पाते
स्वप्नहीन आँखों का सूनापन
जिसके शैशव में लहराते थे
मिसिसीपि के उद्दाम प्रवाह
आदिम सभ्यताओं के हरियावल तट।

हाथों में अंगड़ाई लेकर जगती चटख कलियाँ
देखती थीं एक रुजली सुबह का छोर
ईश्वर के मुँह में हँसते थे फूल
दिन आज की तरह अनीश्वरवादी नहीं थे
न हाँपते थे मौसम
फलाँगते निकल जाते थे।

आज सभी पगडंडियाँ मौन हैं
रास्ते भर जाते हैं जर्जर पत्तों से
आकाश झाड़ियों में उलझकर रह जाता है
हँसों के पंख
टूटकर बिखर जाते हैं चरागाहों में।
2007

जन्म 1944, पैतृक गाँव देवटी, जिला सोलन, हि.प्र.
[20-आसा सिंह बाग, अम्बाला शहर, हरियाणा-134007]
मो. 94163 78090

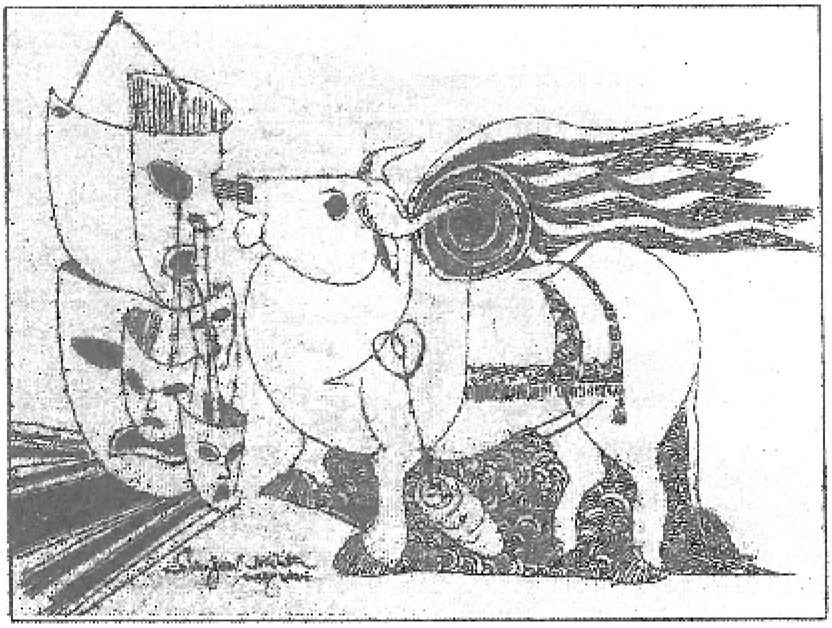

अंतर

❑ अश्विनी रमेश

माँ! तुम बाँध क्यों नहीं लेती
सत्तू-छास
जौ और कुकड़ी की रोटियों की पोटली
मैं आज गाँव छोड़कर
शहर जा रहा हूँ
वह सब देखने
जो मैंने यहाँ नहीं देखा
वह सब करने
जो यहाँ नहीं किया
और...
वह सब पाने और भोगने
जो यहाँ नहीं पाया और भोगा

मेरी इच्छाएँ और विवशताएँ
एक होकर
मुझे यहाँ से
दूर...ले जाना चाहती हैं
और अब तुमसे
बगावत करने के अलावा
मुझे कोई दूसरा रास्ता दिखाई नहीं देता
यह जानते हुए भी कि मुझे एक न एक दिन
वापस गाँव तो लौटना ही होगा
लेकिन
तब तुम नहीं होगी
और...मेरे लिए
गाँव या शहर में
अन्तर रह जाएगा
मात्र शब्दों का
1994

पैतृक गाँव कुंदली, ठियोग ज़िला शिमला, हि.प्र.
[गाँव कुंदली ठियोग, ज़िला शिमला, हि.प्र.]
मो. 70180 83966

दो कविताएँ

❑ तुलसी रमण

भेड़

बुज़ुर्गों का कहना है
जब भेड़ मूंडनी हो
उससे पूछा नहीं जाता

दो चार हरी पत्तियाँ
रोटी का एक ग्रास
या चंद दाने दिखाकर
एक सछल, शरारती पुचकार के साथ
करीब बुला लिया जाता है उसे
और वह निरीह
सहज चली आती है

बस
सुविधाजनक ढंग से
कैंची चलाकर
ऊन उतार लो उसकी
और फिर से
एक अर्से के लिए
ऊबड़-खाबड़ गहन निर्जन में
नंगा कर छोड़ दो
जहाँ रहते हैं
असंख्य भेड़िये और
भेड़िये के बच्चे
उसके खून की ताक में

सिंहासन सजते हैं
भेड़ की ऊन से
राजतिलक भी होता है
भेड़ के खून से
पर निरीह भेड़ ठगी-सी
बस ऊन होती है
या खून।
1986

बर्फ़ की बिजलियाँ

कत्थई चोलू पहने
वे आती रहीं समूहों में
एक जैसी हर घर से
उन्हीं रास्तों
जो घर-द्वार से साँझे आँगन तक
लाँघते रहे सदियाँ

हँसती, खनकती, फिर लज्जाती
हाथों में कांसे की थालियाँ
राख से धुल-धुलकर
गोधूलि के पूर्ण चंद्रमा-सी
अतिथियों के सहभोज के लिए।

नाक, कान, गले में
विरासती खून में ढला
शीत-मरु में उगाया गया
आग-सा लशकता पुराना सोना
सोने में जड़े कई रंग रत्न
संघर्ष के
स्वभाव ढले श्रम के
थालियों में अंकित
दादा परदादा के नाम
गाँव जाहलमा का इतिहास।

यह उनकी दोहर है
सुबह ही सींचकर लौट आयीं वे

हिमानियों के पानी से
नयी निकल आतीं
मटर की चपटी फलियाँ
आलू के अनूठे फूल
धूप और हवा को
सूचना देते हुए कि
भुगर्भ में फलने लगा है कंद।

सोने-तांबे के चेहरे
बर्फ़ का सन्नाटा
कांसे की अनश्वर हँसी
सरल लय बालों की
कदमों का शाश्वत शील
दर्रों से उतरीं
गोल छोटी दीप्त आँखें
बर्फ़ की बिजलियाँ
सखियाँ चंद्रभागा की
लाहुल की माँ-बेटियाँ
2006

जन्म 1954, पैतृक गाँव मांदल (घूंड), जिला शिमला, हि.प्र.
['दयार', दुर्गा कॉलोनी, ढली, शिमला-171012]
मो. 94180 86986

दो कविताएँ

❑ अनूप सेठी

ठियोग

भेखल्टी में धूप सब से पहले आएगी
ठियोग के शाली बाज़ार के पीछे जब पहुँचेगी
बहुत से लोग तब तक शिमला पहँच चुके होंगे

राजू ने छोले उबाल लिए होंगे
समोसे तले जा रहे होंगे
बस अड्डे पर घिसे हुए कैसेट बजने लगेंगे

धीरे-धीरे धूप नीचे घाटियों तक उतरेगी
लोग ऊपर चढ़ेंगे बूढ़ों की तरह
निर्विकार खच्चरें मटरों की बोरियाँ लाद लाएँगी

खचाखच भरी पहाड़ी सैरगाह के पिछवाड़े बसा यह कस्बा
ट्रकों बसों की आवाजाही से थका
तहसील के दफ्तरों को लादे खड़ा
सेबों की साज सम्भाल में मांदा हुआ जाता
सोडियम पके आमों को निहारता
कुछ बोलना चाहता है बोल नहीं पाता

बसें बहुत आती हैं आगे चली जाती हैं
कोई नहीं ऐसी बस खत्म हो जाए यहाँ आकर
बने फिर यहाँ से जाने के लिए।

1995

पंख

एक घर था
उसको लग गए पंख

गाँव में था
एक कमरा एक रसोई एक बरामदा
एक घुराल एक गोहर
कुछ बूढ़े कुछ जवान कुछ बच्चे
जनाना मर्दाना
ज़मीन जंगल पानी पत्थर
पसीना गोबर की गंध
तंगहाली मस्ती
थोड़ा थोड़ा सब कुछ
जैसा होता है गाँवों में
और गाँव में घर होता है

आ गया चौरासी लाख योनियों के चक्कर में
जब लग गए पंख
आ पहुँचा परदेस
इकहरी ईंट की पर्दी वाले
दो-अढ़ाई कमरे
सीमेंट की छत वाले हवादार डिब्बे
सड़क किनारे
बाज़ार के पड़ोस में आ बैठा
पंखों को समेट के कुछ देर
गोबर घास डंगरों के पानी-सानी से दूर

कमीज़ों को पैंट के अन्दर ठूँसकर
मेज़ों कुर्सियों में धड़ धंसाए
आदमी औरतें
अखबारी कागज़ों के लिफाफों में सब्ज़ियाँ ढोते
दादियाँ बच्चों को संभालती सहती
दादे दवाइयों, पेंशनों की पर्चियाँ सहेजते

पड़ोस को पीछे धकेल कर
बाज़ार घर में घुस आया
गाँव से आए अचार के चटखारे लेता
जैसे होता है कस्बों में
सोफा-सेटों वाला घर

फिर से जब लग गए एक बार पंख

दूर दूर बिखर गया
बहुत लम्बी पटड़ियों
बहुत व्यस्त सड़कों से
बहुत व्यस्त बाज़ारों में

कुछ बूढ़े कुछ जवान कुछ बच्चे
जनाना मर्दाना
बाज़ारों से सपने उठाते
मकड़जाल नौकरियों
दसफुट्टा कोठड़ियों
और कम्पनियों के लार टपकाते शेयरों के साथ
उनींदे अपने पंखों में खोंसते
उड़ने लगते
इकसार नहीं है सूरज
सूखे पत्तों की तरह झरते

थोड़े से माई के लाल
ऊँची इमारतों की लिफ्टों में
चढ़ने उतरने में माहिर
बहुत सारे माता का माल

घर के पंखों पर सवार होके निकले थे
घर को कैसे-कैसे उग आए पंख
चौरासी लाख योनियों के चक्कर में
1998

जन्म 1958, पैतृक गाँव दरवेली, जिला हमीरपुर, हि.प्र.
[बी.1403, क्षितिज, ग्रेट ईस्टर्न लिंक्स, राम मन्दिर रोड, गोरेगाँव (प.), मुम्बई-400101]
मो. 98206 96684

दो कविताएँ

❑ यादवेंद्र शर्मा

पहाड़, काफल और औरतें

पहाड़ों से उतरकर
तलहटी बाज़ार में आती हैं औरतें
बहनों से चेहरे भोले मासूम
काफलों से भरी टोकरियाँ

वे चुनती हैं
कोई ढुंढवाली दुकान
चाय के साथ गटकती हैं रोटियाँ
और भटकती हैं
सड़कों, गलियों और घरों में शाम तक
चिकनी चुपड़ी चुभनदार
हर वक्रोक्ति का एक ही जवाब
काफलों का सुर्ख़ रंग और मिठास

मुझे खुशी होती है
जब देखता हूँ
सुदूर ऊँघते झाड़ों से
आ पहुँचे हैं काफल
हड़बड़ाये हुए शहर में
आदमी के डर और अकेलेपन में
बनैलापन बिखेरते हुए

शाम होने से पहले वे औरतें
जल्दी-जल्दी खरीदती हैं
कोई घिसा, रंग उड़ा सूट कबाड़ी से

तम्बाकू, तेल, नमक या ऐसा ही ज़रूरी और कुछ
और चढ़ने लगती हैं भाग
पहाड़ की बेटियाँ
1987

रेशमा

सिंध और चनाब के तटवर्ती वनों में
भटक रही है रेशमा
तुम्हारी आवाज़
जा रहा है
बनजारों का एक काफिला
टुन टुन घंटियाँ
तन्हा रास्ता
बाँसुरी-सी बज रही है तुम्हारी आवाज़
मटियाली सड़क पर झुका है स्नेहमय आकाश
धरती के रूप रस गंध में सराबोर
धरती सी उर्वर
पके खरबूजों की महक सी है यह आवाज़
परेशान था
एक प्रवासी
न्यूयार्क की तेज़तर दुनिया में
तुम्हारे स्वरों की छुअन से लौटा
अपने वतन
आँगन में जहाँ माँ दूह रही थी दूध
पम्प पर नहा रहा था छोटा भाई
और बहन चबा रही थी तिनका
1988

जन्म 1956, पैतृक गाँव सुंदरनगर, जिला मण्डी, हि.प्र.

[117/6 लोअरबाड़ी, सुन्दरनगर-1, ज़िला मण्डी, हि.प्र.-175018]

मो. 88940 16957

दो कविताएँ

❑ दीनू कश्यप

युद्ध से लौटा पिता

बच्चे ख़ुश होते हैं
महान और सुरक्षित समझते हैं
जब लौटता है
युद्ध से उनका सिपाही पिता

बारी-बारी से गोद में बैठते हैं वे
पिता के खुरदरे चेहरे को
नन्हीं उँगलियों के पोरों से छूते हुए
वे लाड़ जताते हैं

अपनी-अपनी समझ से
करते हैं प्रश्न वे
दुश्मन कैसा होता है पापा
गोली भागती है कितनी तेज
क्या दुश्मन देश
में होते हैं खरबूजे
पिता उनकी पसन्द के
जवाब देता है

वे पूछते रहते हैं बराबर
क्या टैंक ख़ुद ही
चढ़ जाता है टीलों पर
कैसे लाँघी जाती हैं
चौड़ी गहरी नदियाँ
दुश्मन देश की तितलियाँ

कैसी होती हैं पापा
पिता उकताता नहीं प्रश्नों से
बाहों में समेट कर चूमता है उन्हें
बड़ा लड़का पूछता है
क्या खाने-सोने के लिए
फौजी लौट आते हैं बैरकों में
क्या अंधेरा घिरते ही
कर दी जाती है लड़ाई बंद

तब पिता बख़ानता है
मुस्कुराते हुए
सिलसिलेवार
सबसे भयानक सबसे त्रासद
सब से कठिन सबसे यतीम
युद्ध में बिताए
अपने समय को

लेकिन बच्चे हँसते नहीं
भय से उनकी आँखों के डेले
फैलने लगते हैं
बच्चों का यह रूप
पिता को कतई पसंद नहीं
सबसे छोटे को बहलाते हुए
पिता गढ़ता है कथाएँ

जब मैं पहुँचा सीमा पार के गाँव
सबसे पहले मिली
हलवाई की दुकान
वहाँ थी
गुलाब जामुनों भरी कड़ाही
बड़ा व मँझला चुटकी लेते हैं
'आहा'! छुटके के गुलाब जामुन
मँझला पूछता है–
''आपने कितने खाए पापा'
–अरे, खाता क्या
मुझे छुटके की याद आई
मैंने पौचेज़ और पिट्ठु से

गोलियाँ फेंक दी
उन में भर दिए गुलाब जामुन
तभी दुश्मन ने गोलीबारी शुरू कर दी
पिट्ठू और पौचेज छलनी हो गए
गोलियों को ठण्डा किया खांड की पात से
गोलियों को रोका गुलाब जामुनों से

मैं तो बच गया
लेकिन गुलाब जामुन मारे गए
बच्चे समवेत कहते हैं
कोई बात नहीं... कोई बात नहीं
तो छुटके के गुलाब जामुनों ने बचाया आपको

पिता हाँ भरता है
छुटका पिता की मूँछों में
पिरोने लगा है
अपनी नन्हीं-नन्हीं उँगलियाँ
1986

खुले में आओ

क्या फ़र्क पड़ता है
कि आप खड़े हों नूरपुर
या कांगड़ा किले के भीतर

या खड़े हों दो पहाड़ों के बीच
किसी गहरे नाले की
ऊँची चट्टान पर
कहीं भी नहीं हैं आप
इस हवा की पकड़ से बाहर
हवा—
जो आई है
कश्मीर के चिनारों से
कोकराझार के बाँस झुरमुटों से
पंचनद की सिसकियों से

हवा बज रही है

दो कविताएँ

❑ कुलदीप शर्मा

मिलोगे मुझसे

आओगे मुझसे मिलने
तो बचते हुए आना
समय अपने क्रूर और हिंस्र पंजे लिए
घात लगाए बैठा होगा कहीं आस-पास
आदमख़ोर चीते की तरह
दबोच लेगा अचानक
सारी मासूमियत नोंच लेगा चेहरे से
रक्त के साथ दौड़ती
सम्बंधों की आत्मीयता
पी जाएगा।

मिलोगे मुझसे
तो मिलना होगा तुम्हें
सुलगते हुए अतीत से
क्या उतर सकोगे उन भग्नावशेषों में
जहाँ दफ़न है एक दहकती चीख़
क्या झाँक सकोगे
उस अँधेरे भुतहे कुएँ में
जहाँ सामूहिक आत्मघात करके
पत्थरों की तरह गिरे हैं शब्द
जहाँ से अन्याय के प्रतिकार में उठती आवाज़ें
निकलती हैं एक आदिम कराह की तरह
और अर्गला-सी कस जाती है गले में।

मिलोगे मुझसे तो मिलना होगा तुम्हें
सांय-सांय करते सन्नाटे से

दरअसल जो उन सारी चीखों का अनुवाद है
जिन्हें दफ़न किया गया है
दुनिया के कोने-कोने में।
क्या रख सकोगे पाँव
लावे के उस दरीचे पर
जहाँ साहस से जटायु ने
लड़ी थी अपनी अस्मिता की अंतिम लड़ाई
उसके रक्त-सने परों को रौंदते
क्या पहुँच पाओगे मुझ तक।

मेरी ओर एक कदम बढ़ाते ही
पाँव में बिछ जाएगी गाज़ा पट्टी
अन्याय उठेगा सुनामी की तरह
और मिटा देगा वे सारी पगडंडियाँ
जो मुझ तक पहुँचती हैं।

मिल पाए तो एक
दुर्गम बीहड़ की तरह
मिलना होगा मुझसे।

आओगे मुझ तक
तो एक जले हुए जंगल से गुज़रकर
आना होगा तुम्हें
ठूँठ पर उकेरना होगा कोई चिह्न
लौटने के लिए।
इधर आओगे तो एक सूखी नदी
तुम्हारे पाँव से लिपटकर रोने लगेगी
ढाढ़स बंधाते आना उसे।

मिलोगे मुझसे
तो उतर जाओगे बेसाखता
मेरे अस्तित्व में
जैसे हाथ-पाँव कटवाकर
सूखे कुएँ में उतर गया था पूरन।

चेहरे पर मुस्कान नहीं
पीड़ा के अनगिनत अनुत्तरित प्रश्न
तुम्हें भीतर तक छील देंगे
यह सब स्वीकार हो तुम्हें

तो आओ मेरे यहाँ
तुम्हारा स्वागत है।
2010

बटेरड़ा

माँ! मुझे फिर वही कहानी सुनाओ
जिसे सुनते-सुनते मैं अक्सर सो जाया करता था।
याद नहीं
कभी कहानी के अंत तक
जागा भी या नहीं
तुम्हें पता था माँ
नींद कहानी में नहीं थी
तुम्हारी थपकियों और कहानी के बीच
जहाँ से भी आती रही हो नींद
मुझे उड़ा ले जाती थी
अगली रात तक
स्वप्नों और तितलियों के बीच।

अब जबकि इतनी कहानियाँ हैं मेरे पास
और इतने पात्र कि लिखा जा सकता है इतिहास
नींद इतिहास में खो गई है।
वर्षों से खोज रहा हूँ नींद
और इस कोशिश में हूँ
कि जान सकूँ
माँ के हाथ
और लोरी की कहानी का
नींद से क्या रिश्ता है?

लोरी के एक-एक शब्द को
टटोल लिया है मैंने
ढूँढ चुका हूँ उसके सारे संभावित अर्थ
लिख चुका हूँ मीमांसा
दोस्तों से बहस में जीत चुका हूँ।
पर माँ! कहाँ छूट गई है कहानी
कहीं तुमने रख तो नहीं लिया तहा कर
उस पुराने संदूक में
जहाँ हमारे लिए अप्रासंगिक हुई
कितनी ही चीज़ें अटी पड़ी हैं।

माँ कहीं से भी ढूँढकर लाओ
आज मुझे फिर वही कहानी सुनाओ
कैसे बटेरड़ा हाँका गया खेत में
कैसे शिकार हुआ
कैसे मारा गया
पकाया गया, खाया गया
फिर भी ज़िंदा रहा।
कैसे बोलता रहा
जाट के पेट में
मैं बेकसूर हूँ- मैं बेकसूर हूँ!
कैसे अगली सुबह
फुर्र से उड़कर जा बैठा
रात भर से रो-रो कर बेहाल
बटेरड़ी के पास।

माँ मुझे वही कहानी सुनाओ
मैं देखना चाहता हूँ
क्या मृत्यु के पार तक
किया जा सकता है
अन्याय का प्रतिकार
क्या सचमुच जीवित रहा जा सकता है
प्रेम में अनंत तक।

मुझे आज भी विश्वास है माँ
कि ढेर सारी नकली चीज़ों के बीच
तुम्हारी कहानियाँ ही असली है
हालाँकि जहाँ से शुरू होते हैं
संशय से लदे प्रश्न
वहीं से टूटने लगता है
कहानी का सच।

जब भी खोजता हूँ मैं नींद
लोग कहने लगते हैं कि बटेरड़ा
सिर्फ कहानी में जीवित रहता है।
2010

जन्म 1955, पैतृक गाँव सुकड़याल, जिला ऊना, हि.प्र.
[मून विला, रक्कड़ कॉलोनी, ऊना, हि.प्र.-174303]
मो. 70184 02984

दो कविताएँ

❑ मोहन साहिल

पहाड़ का टूटना

आपने सुना होगा शायद
मैंने अपनी आँखों देखा था
उस रोज़ जब
गुर्राकर टूट गया था पहाड़
सड़क के टुकड़े करता
घरों को लीलता
रौंदता खेतों को
एक लहराती नदी के बीचों बीच
खच्च से जा फंसा था पहाड़
सामने की धार पर चिल्ला पड़ा था
एक बालक
घाटी के दूसरे छोर पर एक लड़की
पूजा की थाली पकड़े फिसल गई थी
जानते थे वे
एक दिन टूट जाएगा पहाड़
क्योंकि पहाड़
कतरा-कतरा छिलने के बजाय
टूट जाने में ही समझता है
अपनी शान
1995

गुच्छियाँ

(पहाड़ों पर जंगल में उगने वाला एक औषधीय गुणों वाला कुकरमुत्ता)

जिस समय आसमान में
बादलों की गर्जन से डरे बच्चे
छिपते हैं माँ के आँचल में

गाँव के पास जंगल में उगती हैं
बिजली की चमक में
काली बेडौल गुच्छियाँ
जब खेत बागीचों में कम होती है फसल
ओले फलदार पौधों के फूल झाड़ देते हैं
उस वक़्त जंगल मिटाता है गाँव की भूख
बच्चे औरतें सभी निकल जाते हैं
रोटियाँ बांध जंगल को
दिखती है उसी को गुच्छी
होता है जो भागवान
लेकिन अभिशाप है ये भी
दिन भर जंगलों में भटक
ढूंढने वाले इन्हें खा नहीं पाते
उनके नहीं उगती हैं ये गुच्छियाँ
उन्हें तो लाकर पिरो देना है इन्हें धागों में
टांग देना है रसोई में चूल्हे के ऊपर
सुखाने के लिए / परिवार के मुखिया को
एक दिन इस संजीवनी को बेच आना है
बाज़ार में बनिया के हाथ
बदले में लाना है सोसाईटी की दुकान से
खाद और रसायनों की स्प्रे वाला सड़ा गेंहूँ
आटा या कंकड़ मिला चावल
भीगी और फीकी चीनी
और बीड़ी के कुछ बंडल
यह गुच्छी पकेगी किसी फाईव स्टार होटल में
या कोई दवा कंपनी खरीदेगी
और भी ऊँचे दाम बिकेगी
सबको मालदार बनाएगी
गाँव के जंगल में उगी काली कलूटी गुच्छी
सिवाय उनके / जो हर साल
भागेंगे नंगे पाँव
जब गरजेंगे बादल / सदियों से
आसमान की ये गरज चमक
कुछ भी तो बदल नहीं पाई
2008

जन्म 1963, पैतृक गाँव भेखलटी (ठियोग), जिला शिमला, हि.प्र.
[शाली बाजार, ठियोग, जिला शिमला, हि.प्र.]
मो. 98170 18052

दो कविताएँ

❑ अजेय

ब्यूँस की टहनियाँ

(आदिवासी बहनों के लिए)

हम ब्यूँस की टहनियाँ हैं
दराटों से काट-छाँट कर
सुन्दर गट्ठरों में बाँधकर
हम मुंडेरों पर सजा दी गई हैं
खोलकर बिछा दी जाएँगी
बुरे वक़्त में
चारे की तरह
हम छिलेंगी
जानवरों के पेट की आग बुझाएँगी

हम ब्यूँस की टहनियाँ हैं
छिलकर
सूखकर
हम और भी सुन्दर गट्ठरों में बंध जाएँगी
नए मुंडेरों पर सज जाएँगी
तोड़कर झोंक दी जाएँगी
चूल्हों में
बुरे वक़्त में
ईंधन की तरह
हम जलेंगी
आदमी का जिस्म गरमाएँगी

हम ब्यूँस की टहनियाँ हैं
रूखे पहाड़ों पर रोप दी गईं

छोड़ दी गई हैं मौसम के सुपुर्द
लम्बी सदियों में हमारी त्वचा काली पड़ जाती है
मूर्च्छित खड़ी रह जाती हैं हम
अर्द्ध निद्रा में
और मौसम खुलते ही
हम पत्थरों से चूस लेती हैं
जल्दी-जल्दी
खनिज और पानी

अब क्या बताएँ
कैसा लगता है...
सब कुछ झेलते हुए
ज़िन्दा रह जाना इस तरह से
सिर्फ़ इसलिए
कि हम अपने कंधों पर और टहनियाँ ढो सकें
ताज़ी, कोमल, हरी-हरी
कि वे भी काटी जा सकें बड़ी होकर
खुरदरी होने से पहले
छीलकर सुखाई जा सकें
जलाई जा सकें
या फिर गाड़ दी जा सकें किसी रूखे पहाड़ पर
हमारी ही तरह।
हम ब्यूँस की टहनियों को
जितना चाहो दबाओ, लचकाओ
झुकती ही जाएँगी लहराती हुई
जब तक हम में लोच है

लेकिन कड़क कर टूट जाएँगी
जिस दिन सूख जाएँगी।
2003

ट्राईबल में स्की-फेस्टिवल

सन सन सर्र सर्र
बर्फ़ पर
चटख झंडे
लाल पीले नीले

मजेंटा और पर्पल और फ्लॉरसेंट बच्चे
पाऊडर स्कीइंग
वाह जी वाह!

अभी कल ही तो पड़ी
पाँच-छह फुट समझो
इस बार तो
कुल मिला कर बड़ी मस्ती है
उम्मीदें जगी हैं
बुजुर्गों ने कहा है बच जाएँगी फसलें

बड़ा महँगा होगा
नहीं शर्मा जी, यह 'इक्युपमिंट'?
इम्पोर्टेड...अच्छा, स्मगल्ड है?
वाह जी वाह!

मनाली वाले हैं
दो चार इंस्ट्रक्टर
कुछ 'फोर्नर'
ये 'फोर्नर' भी बस...और ये छोकरू अपने,
उनके पीछे पीछे

वैसे एक बात कहूँ सर, यह एडवेंचर और मस्ती...
स्वस्थ मनोरंजन है
'टॉनिक' कहो काईंड ऑफ...
वही तो
हमारे ऋषि मुनि
क्या करते थे दुर्गम कन्दराओं में?
एड्वेंचर तो
'हेल्दी थिंकिंग डिवेलप' करता है जनाब
'एक्ज़ेक्टली सर!'

और पी के कैसे गच्च रहते हैं
यहाँ के लोग
पिछली बार याद है
कितना नाचे थे
कपूर साब रात भर छंका[1]...

1. गाँव की महफिल

और कैसी प्यारी प्यारी लड़कियाँ आई थी
दारचा से
वाह जी वाह!

गिल साब का भाँगड़ा
जगह नहीं थी
हॉल में तिल धरने को
मैंने तो डी' स्साब से कहा
यह रौनक मेला लगे रहना चाहिए
ट्राईबल में
और क्या है टाईम पास
हाँ जी, हाँ!

1998

जन्म 1965, पैतृक गाँव सुमनम , लाहौल स्पिति, हि.प्र.
[298, गुरु बेहड़, ढालपुर कुल्लू, हि.प्र.-175101]
मो. 94180 63644

दो कविताएँ

❑ अशोक कुमार

हर्ट मस्क्युलेनिटी

हम पुरुष थे
हमने प्रेमिकाएँ भी कद में छोटी चाही
और परीक्षा में उनके ज़्यादा अंकों से जलते रहे

हम पुरुष थे—
हम बहनों को घर पर रुकने की सलाह देकर
चौराहे पर सिगरेट फूँकते रहे

हमारी मर्दानगी तब आहत हुई
जब साथ चलते-चलते
पत्नी आगे निकल गई दो कदम

और तब भी जब उसकी पोस्ट ऊँची थी
और तनख्वाह ज़्यादा

उसकी फोटो पर लव रिएक्शन देखकर भी
घुटती रही हमारी मर्दानगी
और ठेस लगती रही
इनबॉक्स में पुरुष मित्रों के मैसेज पढ़कर

हमारी मर्दानगी बहुत कमज़ोर थी
वह उसके प्रणय निवेदन पर भी हर्ट हुई
और उसके इनकार पर भी

हर्ट मस्क्युलेनिटी के बोझ से दबे हम

औरतों को वेश्या कहकर
छुपते-छुपाते जाते रहे
शहर की सबसे बदनाम गलियों में
2022

खोहो में चकमक

मैं बारूदों से डरते-डरते
आग से डरने लगा हूँ
मैं सिर्फ उतनी आग चाहता हूँ
जो रोटी पका सके

इसलिए मैं खोहों में
वह चकमक पत्थर ढूँढने निकला हूँ
जिन्हें मेरे पुरखे भूल गए थे
यात्रा पर निकलने से पहले

एक ऐसी यात्रा
जो आग जलाने से शुरू होकर
बारूदों तक आ पहुँची

एक ऐसी यात्रा
जो पत्थर के हथियारों से होकर
जंगी सामान तक आ पहुँची

एक ऐसी यात्रा
जो शिकारी होने से लेकर
आदमखोर होने तक ले आयी

एक ऐसी यात्रा
जिसमें मेरे पुरखे जंगलों से होते हुए
शहर आ पहुँचे हैं
जो जंगलों से ज़्यादा डरावने हैं
2020

जन्म 1981, पैतृक गाँव औड़ा (खजियार), जिला चम्बा, हि.प्र.
[H.No. 17FF, पॉकेट-5, सेक्टर-21, रोहिणी, दिल्ली-110086]
मो. 90155 38006

परिचर्चा

प्रश्न 1. *जब आपने लिखना शुरू किया तब प्रदेश में और प्रदेश के बाहर साहित्यिक माहौल कैसा था?*

2. *आपकी पीढ़ी की हिमाचल की हिन्दी कविता, समग्र हिन्दी कविता में किस तरह अपना स्थान बनाती है? क्या समग्र हिन्दी कविता हिमाचली हिन्दी कविता के प्रति उदासीन रही है? जबकि हमारे पड़ोसी राज्य उत्तराखण्ड की हिंदी कविता की ऐसी स्थिति नहीं रही।*
3. आपसे पहले, आपकी समकालीन और आपके बाद के हिमाचली कविता में आप किन-किन बिंदुओं को रेखांकित करना चाहेंगे?
4. *प्रगतिशील आंदोलन आपके दौर में उत्कर्ष पर था। हिमाचल की काव्य चेतना पर उसका क्या प्रभाव रहा। व्यक्तिगत रूप से आपकी अपनी कविता पर?*
5. *हिमाचल में स्त्री लेखन का क्या परिदृश्य रहा? यहाँ की समकालीन हिन्दी कविता में स्त्री विमर्श किस तरह परिलक्षित हो रहा है? क्या आपको लगता है कि इक्कीसवीं सदी के आरंभ में हिमाचल की हिन्दी कविता में भी कुछ सशक्त युवा स्त्री स्वर उभरे हैं, जो पाठकों को आश्वस्त कर पा रहे हैं?*
6. *टेकनॉलजी, इंटरनेट और डिजिटल सोशल मीडिया ने छपी हुई कविता (poetry on the page) पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव/दुष्प्रभाव डाला है?*
7. *आपकी कविता को खाद-पानी कहाँ से मिलता है?*
8. *आपकी कविता के प्रेरणास्रोत क्या हैं? कुछ कवियों/कविताओं के नाम लीजिए जिन्होंने आपके जीवन एवं रचनात्मकता पर विशेष एवं अविस्मरणीय प्रभाव छोड़े हों।*
9. *विपाशा के माध्यम से कवियों की युवतम पीढ़ी के लिए कोई संदेश देना चाहेंगे?*

निरंतरता और विपुलता का अभाव

❑ पद्म गुप्त अमिताभ

शब्द के प्रति सम्मान तो जन्मजात संस्कारों में था। छात्र जीवन में अनेक कविताएँ लिखीं। वर्ष 1968 में मैं कवि श्रीनिवास से मिला, जिनकी हर साँस कविता, चिन्तन और कला को समर्पित थी। कवि शमशेर ने एक बहुत अच्छी बात कही थी, 'कवि को जीवन के आधुनिक विकास का अध्येता होने के साथ, विज्ञान में गहरी और जीवंत रुचि तथा देश व विदेश के साहित्य से गहरा परिचय होना अनिवार्य है। उसके साथ ही पुराने भक्ति कवियों, उर्दू कविता और उसके क्लासिक गद्य को अपने साहित्यगत और भाषागत संस्कारों में बसा लेना चाहिए।'

विभिन्न कला आन्दोलनों और प्रवृत्तियों से जुड़े रहने और भारतीय तथा विश्व

साहित्य को पढ़ने का यही व्यसन हमें साथ लाया।

इसी वर्ष मैक्सिको के ग्रीष्म ओलिम्पिक से पहले छात्रों पर हुई गोलीबारी पर कविता लिखने के कारण मेक्सिकन कवि आक्टेवियो पाज़, जो उस समय भारत में मेक्सिको के राजदूत थे, त्यागपत्र देकर पेरिस चले गए। कुछ ही दिन पहले हमारी फोन पर उनसे बात हुई थी। इसी वर्ष पेरिस में उग्र छात्र आन्दोलन हुआ और वियतनाम युद्ध में माय लाई (My Lai) हत्याकांड जैसी घटनाएँ हुई। लगभग यही समय बीट और अश्वेत कविता का था, बंगाल की भूखी पीढ़ी की कविता और नक्सल आन्दोलन अपने चरम पर थे।

तो इन बातों ने आधुनिक लेखन की समझ विकसित की।

निराला तो 1924 में ही (कवि मासिक, कानपुर) छन्द के नियमों के पार मुक्त कविता की घोषणा कर चुके थे और इसे ही यथार्थतः हृदय का निर्दोष उद्‌गार बताया था। आने वाले दशकों में स्वयं निराला, अज्ञेय, मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर, रघुवीर सहाय, नरेश मेहता, भवानी प्रसाद मिश्र, कुंवर नारायण, सर्वेश्वर और केदारनाथ सिंह ने कविता को हिन्दी साहित्य की प्रतिनिधि विधा बना दिया। कवियों की विस्तृत सूची तो बहुत लम्बी हो जाएगी।

हिन्दी साहित्य के लिए तो वह दशक स्वर्णयुग के समान था, किन्तु कुछ पत्रिकाएँ जैसे ज्ञानोदय, नई कहानियाँ, धर्मयुग और साप्ताहिक हिन्दुस्तान बन्द भी हो गई। राष्ट्रीय स्तर पर कहानी और कविता के क्षेत्र में बहुत सशक्त रचनाएँ लिखी जा रहीं थी, किन्तु प्रदेश के सम्बंध में ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता सिवाय इसके कि कुछ नए ढंग का लेखन शुरू हो चुका था। साठ के दशक के हिमाचल के लेखन को छिटपुट ही कहा जाएगा। हिमप्रस्थ के प्रकाशन के बाद स्थिति कुछ बदली, रामदयाल नीरज, सत्येन्द्र शर्मा, ज़िया सिद्दीकी और श्रीनिवास श्रीकांत इससे जुड़े थे। कहानीकारों में सुन्दर लोहिया (इनकी एक कहानी मैंने 'नई कहानियाँ' में 1966 में पढ़ी थी), योगेश्वर शर्मा और विजय सहगल थे। शेष कथा लेखक जैसे रत्न सिंह हिमेश बहुत कम लिख रहे थे। कवियों में श्रीनिवास श्रीकांत के अतिरिक्त, डॉ. परेश थे जो कुछ ही साल शिमला में रहे, ज़िया सिद्दीकी जो हिन्दी और उर्दू दोनों में लिखते थे, चम्बा से नन्देश कुमार और देव बड़ौत्रा, शिमला से अनिल राकेशी और अवतार एनगिल। इन्हीं दिनों मैं भी 'हिमप्रस्थ' गुट से जुड़ गया तथा हमारी दैनिक संध्या गोष्ठी ज़िया भाई के घर होती थी जिसमें उर्दू के शायर भी थे। बाद में जब भाषा विभाग का संयुक्त काव्य संकलन प्रकाशित हुआ तो उसमें संभवतः रेखा भी थी। प्रदेश के अन्य सभी लेखक प्रायः पहाड़ी में ही लिख रहे थे।

भले ही निर्मल वर्मा का बचपन शिमला में बीता हो और मोहन राकेश शिमला में रहे हों, इनका प्रदेश के साहित्य से कुछ लेना-देना नहीं था। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि प्रदेश से बाहर की कुछ पत्रिकाओं में छपने और इधर-उधर से प्रकाशित संकलनों के बावजदू हमारी पीढ़ी के रचनाकारों का लेखन प्रदेश के बाहर अनजाना ही रह गया, क्योंकि उसमें निरन्तरता और विपुलता दोनों का अभाव था। बाद के वर्षों में अपनी विक्षिप्तता से उबरकर श्रीनिवास श्रीकांत ने खूब कविता लिखी, किन्तु लगातार आधी शताब्दी तक अच्छी कविता लिखने के बावजूद उन्हें भी वह पहचान कभी न मिल सकी जिसके वह पात्र थे।

समकालीन और प्रगतिशील साहित्य पर इतना कुछ लिखा जा चुका है कि मैं इस बहस में पड़ना ही नहीं चाहता। मैं किसी भी कालखंड अथवा इसकी प्रवृत्तियों का विश्लेषण नहीं करना चाहता। अनेक प्रगतिशील रचनाकार अपने निजि जीवन में परले दरजे के दकियानूस रहे और अपनी मध्यवर्गीय प्रवृत्ति से बाहर नहीं निकल पाए। कट्टरपंथी ब्राह्मणों और मुल्लाओं के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करने वाले कबीर अथवा राणा की व्यवस्था का कठोर भाषा में प्रतिकार करती मीरा–

राणा नहीं भावे थारो, दसलड़ो रंगरूड़ो।
थारे देसां में साध नहीं, बसे सब कुड़ो ॥

के तेवर आधुनिक युग के प्रगतिशील कवियों से अधिक उग्र हैं।

मुझे नहीं लगता हमारे समय के किसी रचनाकार की रचना प्रक्रिया को किसी राष्ट्रीय आन्दोलन ने प्रभावित किया है। हम में से कुछ पढ़ाकू किस्म के थे, हम लोगों का एक नितांत वैयक्तिक संसार था जिनकी रचना में हमारे परिवेश के अतिरिक्त समकालीन सरोकार शामिल तो रहे पर उन पर किसी आन्दोलन विशेष का प्रभाव नहीं दिखाई देता। सत्तर के दशक में जनवादी लेखन के प्रभाव में इस आशय का एक मंच अवश्य बना, किन्तु वह कागज़ों में ही रह गया। बहुत बाद में कथाकार केशव ने 'शिखर' नाम मंच की स्थापना की, जिसमें पत्रिका प्रकाशन और साहित्य सम्मेलन आयोजित करने का लक्ष्य था। प्रथम अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन शिमला में अप्रैल, 1981 में हुआ, जिसमें हिन्दी जगत के अनेक साहित्यकारों ने भाग लिया। प्रदेश की कुछ-कुछ अखिल भारतीय पहचान बनने लगी, उन्हें प्रशासक, कवि और लेखक महाराज कृष्ण काव का भी सक्रिय सहयोग मिला।

किन्तु हिमाचल के कवि-लेखकों को वास्तविक पहचान तो 1985 में प्रकाशित 'विपाशा' से मिलनी प्रारम्भ हुई। सरकारी पत्रिका होते हुए भी, सरकारी बन्धनों से मुक्त 'विपाशा' का स्तरीय रचनाओं के कारण हिन्दी जगत में व्यापक स्वागत हुआ और यह शीघ्र ही हिन्दी पाठकों और लेखकों की प्रिय पत्रिका के रूप में स्थापित हो गई। इसे प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में शामिल करने में युवा संपादक तुलसी रमण का समर्पण और ऊर्जा निश्चित ही मुख्य कारक रहे हैं, जिन्होंने इसे प्रतिष्ठा और गरिमा दोनों प्रदान की। 'विपाशा' ने प्रतिष्ठित साहित्यकारों को जोड़ने के अतिरिक्त देश-प्रदेश की युवा प्रतिभाओं को एक सार्थक मंच प्रदान किया।

स्त्री विमर्श, दलित विमर्श जैसे मुद्दे हिन्दी साहित्य में बहुत बाद में आए। ये मुद्दे तो सार्वभौमिक हैं, किन्तु आठवें दशक के बाद इन विमर्शों की मुद्रा और स्वर दोनों विभाजनकारी और प्रतिहिंसात्मक हो गए। स्त्री विमर्श केवल स्त्री रचनाकारों की चिन्ता का विषय नहीं है, पुरुषों ने संभवतः इस पर अधिक लिखा है और प्रदेश में तो इस समय समर्थ स्त्री रचनाकारों की संख्या इतनी अधिक है कि स्त्री विमर्श की चिन्ता छोड़ देनी चाहिए। कविता में तो जन्मजात रुचि थी। पढ़ाई के दौरान पहले हिन्दी और फिर अंग्रेज़ी कविता से परिचय हुआ। सबसे पहले तो 'वह तोड़ती पत्थर' ने ही प्रभावित किया जो एक सर्वकालिक महान रचना है। मेरे चाचा हिन्दी में एम.ए. कर रहे थे तो मेरा परिचय प्रसाद से मैथिलीशरण गुप्त तक से हुआ। कॉलेज में उर्दू कवियों ग़ालिब, मीर, मजाज, साहिर, फैज़ और अहमद नदीम कासमी व जां निसार अख़्तर को पढ़ा। बी.एस.सी. के बाद एक साल एम.ए. अंग्रेज़ी

में दाखिला लिया तो अंग्रेज़ी कविता पढ़ी। उसमें चॉसर (Chaucer) से लेकर प्रथम विश्व युद्ध तक के कवि थे। फिर अन्तर्राष्ट्रीय कविता की ओर रुझान हुआ और रूसी कवियों येवतुशेंको, अलेक्सान्द्र ब्लाक, मायकोव्सकी, पास्तरनाक, येसेनिन और अन्ना अश्वातोवा को पढ़ा। इनके हिमप्रस्थ के लिए अनुवाद भी किए। बाद में बीट कवियों एलन जिन्सवर्ग (Allen Ginsberg) ग्रेगरी कोर्सो (Gregary Corso) और लारेंस फर्लेगेहट्टी (Lawrence Farlengehatti) को पढ़ा। ब्रिटिश, अमेरिकन कवयित्री सिल्विया प्लाथ (Sylvia Plath), डेनिसे लेवरतोव (Denise Levertov), डी.एच. लारेंस (D.H. Lawrence) और स्पेनिश कवि लार्का (Federicv Garcia Larca) के पढ़ने के बाद आकटेवियोपाज़ और पाब्लो नेरूदा (Pablo Neruda) और रित्सो (Yannis Ritsos) को पढ़ा।

अपने समकालीन रचनाकारों का नाम लेना मुश्किल काम है, उन दिनों के उभरते कवियों में मंगलेश डबराल और राजेश जोशी ने विशेष प्रभावित किया।

डिजिटल तकनीक से, हमारी पीढ़ी तो पूरी तरह सहज नहीं हो पाई, नए रचनाकार इसका उपयोग बखूबी कर रहे हैं। अनेक पत्रिकाएँ डिजिटल हो गई हैं और नये रचनाकारों की एक पूरी पीढ़ी डिजिटल माध्यमों से रचना प्रवृत्त है, किन्तु मैं समझता हूँ कि डिजिटल साहित्य के प्रसार के बावजूद हज़ारों व्यावसायिक और लघु पत्रिकाओं के माध्यम से कागज़ पर छपे साहित्य की पहुँच अधिक व्यापक है और स्थायी भी। हाँ, चीज़ों की गुणवत्ता में सुधार हुआ है और चीज़ें अधिक त्वरित और सुगम हो गई हैं। व्यक्ति घर बैठे विज्ञान, कला और साहित्य की किसी भी विधा का स्पर्श मात्र से साक्षात्कार कर सकता है। व्याकरण की दृष्टि से वर्तनी में कुछ परिवर्तन हुए हैं। एक ही बात की आशंका है कि भविष्य में कोई सिरफिरा हैकर अथवा कोई खगोलीय दुर्घटना इस समूचे तंत्र को उपद्रव में न डाल दे।

मैं पहले ब्रेन हेमेरेज और फिर लगभग दृष्टिहीन हो जाने के कारण लगभग दो दशक से भी अधिक साहित्य से कटा रहा। अब पिछले कुछ वर्षों से लेखन में फिर से सक्रिय हुआ हूँ। नये रचनाकारों के लिए कवि शमशेर की सलाह से बेहतर क्या परामर्श हो सकता है? हर प्रकार की राजनैतिक गुटबंदी से दूर रहकर किया गया लेखन ही आपको प्रामाणिक बनाएगा। प्रतिगामी और विघटनकारी शक्तियाँ हर युग में उपस्थित रहती हैं, इनकी नकारात्मकता के चलते रचनाकर्म हर युग में जोखिम का काम रहा है, किन्तु रचनाधर्मिता के निर्वाह के लिए इतना जोखिम तो अपेक्षित है।

[20-आसा सिंह बाग, अम्बाला शहर, हरियाणा-134007]

मो. 94163 78090

हिमाचल के कवि अभी पहाड़ लांघ कर बाहर नहीं निकले थे

❑ रेखा

1. सही मायने में मेरे लेखन का आरंभ मैं 1983-84 के आसपास समझती हूँ, जब हम लोग शिमला आए। उससे पहले कभी-कभार कुछ लिखा तो वह डायरी तक सीमित रहा। साल में एक-आध बार कभी मौका मिला तो किसी मंच से कविता पाठ कर लिया, बस इतना ही। जहाँ तक याद है, कॉलेज के दिनों में कुछ कविताएँ 'हिमप्रस्थ' में छपीं। कॉलेज में जितने साल रही 'यूथ फैस्टिवल' में कविता-पाठ में प्रथम पुरस्कार मुझे ही मिलता रहा। इसीलिए कवि जानी जाने लगी। परन्तु लिखने के विषय में कभी गम्भीरता से नहीं सोचा। पढ़ने में बचपन से ही रुचि थी, परन्तु पढ़ती तो कहानियाँ या उपन्यास ही थी। कविता नहीं। मैं क्योंकि अंग्रेज़ी साहित्य की विद्यार्थी थी इस कारण भी हिंदी कविता की तरफ अधिक उन्मुख नहीं हुई। छात्र जीवन में किसी तरह के वैचारिक आन्दोलनों से कोई सम्बंध नहीं रहा न ही कोई वैचारिक प्रतिबद्धता। इसी कारण मैंने कविता केवल आत्माभिव्यक्ति के लिए लिखी। मेरे पहले संग्रह 'अपने हिस्से की धूप' में इसी दौर की कविताएँ हैं।

मेरी जानकारी में 'हिमप्रस्थ' ही एक सुलभ साहित्यिक मंच था और उसके इर्द-गिर्द जुड़े कुछ कवियों के केवल नामों से ही परिचित थी वह भी सुंदर लोहिया और के.एल. वैद्य के माध्यम से क्योंकि ये दोनों महानुभाव मेरे शहर मण्डी से आते हैं और इनसे मेरा कुछ सम्पर्क भी था। इन्हीं लोगों से राम दयाल 'नीरज', सत्येन, ज़िया सिद्दीकी, श्रीनिवास श्रीकांत, अनिल राकेशी, अमिताभ आदि के नाम सुने थे। शिमला आने के बाद इन सबसे सम्पर्क हुआ।

अस्सी के दशक में शिमला में 'शिखर' नाम की साहित्यिक संस्था का वर्चस्व था। मैं भी यहाँ आकर स्वतः ही इससे जुड़ गई और तदनन्तर कई समकालीन सृजनधर्मी लोगों और कवि मित्रों से जुड़ने का मौका मिला। उस समय कई राष्ट्रीय स्तर के आयोजन यहाँ होते रहते थे। बहुत-सी साहित्यिक गतिविधियाँ चलती रहतीं थी। इस दौरान मुझे कई बड़े साहित्यकारों को देखने और सुनने का मौका मिला जिनके अब तक केवल नाम सुन रखे थे। यह सारा माहौल न मिलता तो शायद मैं लिखने की तरफ प्रवृत्त भी न हुई होती। 'शिखर' की घरेलू गोष्ठियाँ मेरे लेखन के लिए Launching Pad बन गईं। उन सभी मित्रों के सहयोग से लेखन को धार और दिशा मिली और मैंने अपने भीतर के कवि और कहानीकार को पहचाना।

2. हमारी पीढ़ी के बहुत से कवि समग्र (मुख्य धारा) की कविता से भौगोलिक रूप से भले ही दूर रहे होंगे, परन्तु उनकी कविता किसी भी दृष्टि से न्यून नहीं थी। लगातार उनकी रचनाएँ प्रकाशित हो रहीं थी और वे सराहे भी जा रहे थे। समग्र हिन्दी कविता हिमाचल की कविता के विषय में उदासीन रही या नहीं मैं नहीं कह सकती। हाँ, इतना ज़रूर है कि साहित्य में भी हर दूसरे क्षेत्र की तरह स्पर्धा है और यदि हम उसमें शामिल होते हैं, सबके साथ दौड़ने की हिम्मत रखते हैं तो अन्य कोई हमारे प्रति उदासीन कैसे रह सकता है, जो कविता स्तरीय रही होगी उसका नोटिस भी लिया गया। उत्तराखण्ड की हिन्दी कविता से तुलना इसलिए उचित नहीं मानती, क्योंकि उनमें से अधिकांश कवि भले ही उत्तराखण्ड में जन्मे-पले हों, परन्तु उनकी कर्मभूमि दिल्ली थी, वे वहाँ बैठे लिख रहे थे। जबकि हिमाचल के कवि अभी पहाड़ लांघकर बाहर नहीं निकले थे।

3. हमसे पहले, हमारी समकालीन और हमसे बाद हिमाचली कविता के विषय में कहते हुए उसकी दशा और दिशा को मैं इस तरह कह सकती हूँ— अपने उद्‌गम से निकली क्षीण धार जैसी नदी, फिर दौड़ती हुई किशोरी, तदनन्तर प्रौढ़ा और फिर अपने पूर्ण विस्तार को प्राप्त गरिमापूर्ण, गतिमान नदी। आज हिमाचल की कविता हर तरह से सम्पन्न और सशक्त है। युवा कवियों की पूरी पीढ़ी कविता रच रही है और उनकी कविता में केवल पहाड़ों और प्रकृति के सौंदर्य से उपजा अहो भाव नहीं है, बल्कि समूचे ब्रह्माण्डीय सरोकार विद्यमान हैं। कविता का भविष्य बहुत आशान्वित करता है।

4. यह सत्य है कि हमारे समय में प्रगतिवाद अपने उत्कर्ष पर था और वही कविता का मुख्य प्रचलित स्वर भी था। हिमाचल की काव्य चेतना पर उसका स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। वाम विचारधारा से उपजा प्रगतिवाद उस समय देश या प्रदेश को ही नहीं पूरे विश्व के चिंतन और सृजन को प्रभावित कर रहा था। साहित्य या कहें कविता भी दो स्पष्ट खेमों में बंटी हुई थी—रूपवादी और प्रगतिवादी। हिमाचल में भी प्रगतिवादी और जनवादी कविता मंच सक्रिय थे। अपनी बात कहूँ तो मुझ पर प्रगतिवाद से इतर कविता का लेबल चस्पां हो गया था। मैं तो समझती हूँ लिखने के लिए कलम उठाना भी प्रगतिशीलता का लक्षण है पर यह बात प्रगतिवाद की रूढ़ परिभाषा में नहीं समाती। लेखन या साहित्य का मूल स्वर प्रतिरोध ही होता है...भले ही प्रतिरोध के रूप भिन्न हों, शैली अलग हो। मुझ पर भी प्रगतिवादी चिंतन का प्रभाव हुआ पर मैंने कभी भी विचारधारा की प्रतिबद्धता का मुखर निर्वाह नहीं किया। इसीलिए कहा गया कि मेरी कविता जब भी उस तरफ झुकती है तो असहज हो जाती है।

5. अस्सी का दशक इस मायने में भी बहुत महत्त्वपूर्ण है कि इसमें एक साथ बहुत सारी महिला लेखक पूरे दम-खम के साथ साहित्य रचना के परिदृश्य में अवतरित हुईं और सक्रिय हुईं। कविता, कहानी, उपन्यास— हर विधा में महिलाओं द्वारा उत्कृष्ट साहित्य लिखा गया। हिमाचल में भी इसका प्रभाव परिलक्षित होता है। फिर भी मैं यह निस्संकोच कह सकती हूँ कि उस समय हिमाचल में स्त्री लेखन की स्थिति पूरे देश की तुलना में अधिक संतोषजनक नहीं मानी जा सकती। कुछेक ही महिला लेखक सक्रिय थीं— उनके नाम उँगलियों पर गिनाए जा सकते हैं।

खैर, स्थिति तेज़ी से बदली। इक्कीसवीं सदी तक आते-आते महिला लेखक बहुत बड़ी संख्या में आगे आईं। उस समय तक पूरे विश्व में और देश में भी स्त्री विमर्श का

बोलबाला था। परन्तु मेरे विचार में उस समय की हिमाचल की कविता में स्त्री विमर्श के बहुत उग्र और आक्रामक तेवर नहीं दिखाई देते। स्त्री विमर्श का प्रभाव तो निश्चित ही है, परन्तु उसका आन्दोलन जैसा रूप नहीं है। वस्तुतः स्त्री की समाज में स्थिति, शोषण, समस्याएँ, संघर्ष... उसकी नियति तो सदा ही स्त्रियों की कविताओं के विषय रहे हैं—मेरी अपनी कविता का कॉन्टेंट भी यही है। इक्कीसवीं सदी के आरम्भ में जैसा मैंने पहले भी कहा, कुछ सशक्त स्त्री स्वर उभरे हैं, परन्तु उनका लिखा हुआ अभी इतना प्रचुर नहीं है कि उसे एक अलग विधा की तरह समझा या देखा जा सके।

6. टेक्नोलॉजी, इंटरनेट, डिजिटल सोशल मीडिया ने छपी हुई कविता को निश्चित ही प्रभावित किया है। यह प्रभाव अच्छा भी है, बुरा भी। अच्छा इस तरह है कि लेखक को पाठकों तक पहुँचना बहुत आसान हो गया है। पहले पाठक मिलना, उन तक पहुँचना एक कठिन समस्या थी। अब स्थिति भिन्न है। पाठकों का बहुत बड़ा वर्ग कम परिश्रम में सुलभ हो जाता है। इंटरनेट ने ज्ञान और जानकारी के ऐसे अभूतपूर्व स्रोत उपलब्ध करवा दिए हैं कि लेखक के लिए अकूत कॉन्टेंट उपलब्ध हैं। उसे घर बैठे पाठकों के साथ-साथ बहुत बड़े लेखक समाज से जुड़ने और विचार विनिमय की सुविधा प्राप्त है। परन्तु बुरा प्रभाव भी चिंतनीय है। लेखकों और कवियों की संख्या में लगभग विस्फोट हो गया है। कविताओं की तो जैसे बाढ़ आ गई है। ऐसे में जो मौलिक लेखन है या जो जैनुइन प्रतिभा है वह इस बीच कहीं खो जाती है। उसे इस बाढ़ में टिके रहना कठिन हो जाता है और पाठकों के लिए उसे ढूंढना। दूसरा, जो सही मायने में उत्कृष्ट और ईमानदार रचनाकार हैं उनमें आत्मप्रचार और आत्मप्रसार की इतनी भूख नहीं होती। यदि होती है तो कहीं न कहीं यह उनकी सृजनशीलता, उनकी संवेदना की गहराई और उत्कटता को प्रभावित करती है या कहें, कुंद करती है।

7. मेरी कविता को खाद-पानी हर जीवधारी की तरह इसी धरती-प्रकृति और मनुष्य और जीवन से मिलता है।

8. प्रत्येक वह वस्तु स्थिति, व्यक्ति या भाव जो लिखने के लिए स्टीमुलेट करें वही प्रेरणा बन जाते हैं। यह अवश्य कह सकती हूँ कि मैंने बहुत से और हर तरह के लेखकों को पढ़ा है। गिनाना या नाम लेना कठिन है। यह कह सकती हूँ कि हर तरह की मौलिक कृतियाँ आपके रचनाकार को आकार देती हैं। मैं वही हूँ, जो कुछ मैंने आज तक समझा, जाना और पाया है।

9. मैं युवतम पीढ़ी से यही कहना चाहती हूँ कि यदि आप कवि हैं तो एक बहुत लम्बी काव्य परम्परा जो भूत से भविष्य तक फैली है—उस परम्परा की एक छोटी-सी कड़ी हैं। कविता लिखने के लिए यह पता होना अत्यंत आवश्यक है कि कविता असल में है क्या। यह तभी होगा जब आप हर तरह की कविता से परिचित होंगे—कविता को उसके समग्र, विराट रूप में जानेंगे। साहित्य चेतना का परिष्कार साहित्य को समझकर और पढ़कर ही हो सकता है। या फिर दूसरा रास्ता है, 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय'—इससे भी इन्कार नहीं, परन्तु यह दूसरा रास्ता और भी कठिन है... यह अपने वश में नहीं है... अपने वश में तो इतना ही है—साहित्य पढ़ें—कविता पढ़ें।

['तथागत', 214/1/1, लोअर जवाहर नगर, मण्डी, हि.प्र.-175001]

मो. 82190 84406

अच्छे आलोचकों का अभाव

❑ केशव

मैंने जब लिखना शुरू किया तब प्रदेश के बाहर साहित्यिक माहौल बहुत समृद्ध था। साहित्य की सभी विधाओं का। इसमें हिमाचल के गुलेरी, यशपाल, निर्मल वर्मा, सुन्दर लोहिया, योगेश्वर शर्मा तथा श्रीनिवास श्रीकांत जैसे प्रमुख लेखकों का योगदान भी उतना ही महत्त्वपूर्ण था जितना देश के अन्य लेखकों का, जबकि युवा पीढ़ी इस परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील थी।

हमारी पीढ़ी की हिन्दी कविता को उसी तरह समग्र हिन्दी कविता में स्थान हासिल होना चाहिए था जिस तरह से अन्य प्रदेशों की हिन्दी कविता को हासिल है, लेकिन कमोबेश ऐसा हो नहीं पाया। ऐसा अकेले हिमाचल ही नहीं, अपितु राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, जम्मू कश्मीर जैसे प्रदेशों की हिन्दी कविता के साथ भी हुआ। संभवतया अच्छे आलोचकों का अभाव ही इसकी वजह रहा है। इसके बावजूद कतिपय कवि अपनी सशक्त रचनाधर्मिता के बलबूते अपनी पहचान राष्ट्रीय स्तर पर कायम करने में सफल रहे।

मेरी राय में अच्छी या देर तक अपना प्रभाव बनाये रखने वाली कविता किसी आंदोलन की मोहताज़ नहीं होती। लेकिन यह भी सच है कि ऐसे आंदोलनों से बेहतर कविता भी निकल कर आती है। इसके लिए आंदोलनों में जो भी अच्छा उसे हमारी संवेदना ग्रहण करती है और आत्मसात भी। इन्हीं अर्थों में हिमाचल की काव्य चेतना पर भी प्रगतिशील आंदोलन का प्रभाव रहा है।

समग्र हिन्दी कविता में स्त्री विमर्श की विद्यमानता जिस तरह से परिलक्षित हो रही है, हिमाचल की हिन्दी कविता भी उससे अछूती नहीं। बेशक हमारी पीढ़ी से पहले हिमाचल में स्त्री लेखन नगण्य रहा। लेकिन हमारी पीढ़ी और हमारे से बाद की युवा पीढ़ी स्त्री लेखन उत्तरोत्तर विकसित हो रहा है और कुछ कवयित्रियाँ मुख्य धारा में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने में सफल भी रही हैं।

इंटरनेट और सोशल मीडिया ने कविता पर प्रभाव तो डाला है, लेकिन सिर्फ भाषा और मुहावरे के स्तर पर। छपी हुई कविता का जो स्थायी महत्त्व है उसे टेक्नोलजी का अस्थायी प्रभाव कभी क्षीण नहीं कर सकता। लेखक इस दिन-प्रतिदिन होने वाले बदलाव के बीच रहते हुए भी केन्द्र और मूल से विमुख नहीं होता।

जीवन, माहौल और पठन-पाठन से।

जीवन और रचनात्मकता पर प्रभाव का अर्थ अगर उसमें निखार लाने से है तो निश्चित तौर पर रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती, मुक्तिबोध, आक्टेवियो पाज़, सिल्विया प्लाथ, डब्ल्यू वी यीट्स जैसे और भी कवियों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से यह काम किया है।

हाँ, इस संदर्भ में इतना ज़रूर कहना चाहूँगा कि युवतम पीढ़ी लिखने के साथ-साथ हिन्दी ही नहीं विश्व साहित्य का भी गहन अध्ययन ज़रूर करे।

छोटे आकाश की कविता का संघर्ष

❑ तुलसी रमण

अब तक प्रकाशित 'विपाशा' की आधारशिला पर हिमाचल की हिन्दी कविता के इस विशेषांक में परिचर्चा का आयोजन इस दृष्टि से सार्थक हो सकता है कि इस बहाने पहाड़ी प्रदेश की अद्यतन हिन्दी कविता का कुछ आकलन हो सकेगा। मार्च, 1985 से आरम्भ हुई प्रदेश की इस साहित्यिक पत्रिका के कविता विशेषांक व्यापक रूप से चर्चित रहे हैं। भारत भवन, भोपाल द्वारा आयोजित 'वागर्थ-विश्व कविता उत्सव' को समर्पित वर्ष 1989 का अंक 26 और वर्ष 2006 में प्रकाशित कविता विशेषांक पाठकों ने सहेज कर रखे हैं। सन् 2010 में इस पत्रिका के पच्चीस साल पूरे हुए तो 'विपाशा अखिल भारतीय कविता प्रतियोगिता' आयोजित की गई तभी रजत जयंती कविता विशेषांक निकाला गया था। कविता प्रतियोगिता से हासिल रचनाओं का चयन और वरिष्ठ कवियों, आलोचकों के समकालीन कविता विषयक महत्त्वपूर्ण लेख और गम्भीर परिचर्चाएँ भी उसमें दी गई थीं। वर्ष 2011 में 'कवि चतुष्टय जन्मशती विशेषांक' प्रकाशित किया गया था, जिसमें आधुनिक हिन्दी कविता के चार बड़े कवियों—अज्ञेय, शमशेर, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की जन्मशती का पर्व एक साथ मनाया गया था।

कविता को लेकर ये विशेष आयोजन कवियों और पाठकों की देश-व्यापी बड़ी बिरादरी के साथ हिमाचल के हिन्दी कवियों और कविता के पाठकों को जोड़ने के ध्येय से थे। अब हिमाचल की हिन्दी कविता पर केन्द्रित अंक निकाला जा रहा है। जाहिर है इसमें बड़ी संख्या में प्रदेश के कवि एक साथ होंगे। वर्ष 2010 में आयोजित कविता प्रतियोगिता में 22 राज्यों के कुल 580 कवियों ने भाग लिया था, जिसमें 136 कवि हिमाचल के थे। गुज़रे बारह सालों में तो विपाशा, शतद्रु और इरावती में कितनी बाढ़ें आ चुकी हैं। इस अंक में यह परिचर्चा रहेगी, जिसके लिए कुल नौ सवाल रखे गए हैं। इनके जवाब में क्रमशः अपनी बात यहाँ कहनी है।

एक

सब जानते हैं कि साहित्य लिखना एकाएक शुरू नहीं होता। पाठ्य पुस्तकों में आदर्श कविताओं का आनन्द लेने के बीच आठवें दशक के शुरू में जिला पुस्तकालय, ठियोग की सदस्यता ली तो किताबों से भरी अलमारियों और मेज पर सजी पत्रिकाओं ने बेहद आकर्षित किया। दिनमान, सारिका, धर्मयुग और साप्ताहिक हिन्दुस्तान जैसी पत्रिकाओं को

पढ़ना नियमित हो गया था। पाठ्य पुस्तकों से हटकर पत्रिकाओं की ताज़गी ने सम्मोहित किया था। पाठक के रूप में मेरी पहली पसन्द कविता ही रही है, सो कविता की पुस्तकें पढ़ने लगा। शुरू में कबीर, बिहारी, प्रसाद, निराला और दिनकर आदि कवियों में खास रुचि बनी।

इस बीच जयप्रकाश नारायण का 'समग्र क्रांति आन्दोलन' उभार पर आया तो 'दिनमान' जैसी पत्रिकाओं और प्रमुख समाचार पत्रों को पढ़ना ज़रूरी हो गया। उन दिनों ठियोग में ही एस.डी.एम. नंदलाल कौशल की अध्यक्षता में 'साहित्य कला निकेतन' का गठन हुआ। पुस्तकालय में जुटने वाले प्रबुद्ध लोगों के साथ हम भी निकेतन के कार्यकारी हो गए। कवि गोष्ठियाँ होने लगी तो तुकबंदी भी करने लगे।

हिमाचल कला-संस्कृति भाषा अकादमी की स्थापना 1972 में हो चुकी थी। डॉ. परमार और लालचंद प्रार्थी के नेतृत्व में यह अकादमी हिमाचली भाषा-संस्कृति की पहचान स्पष्ट करने के उद्देश्य से, पहाड़ी कवि सम्मेलन करवाने की अभ्यस्त हो गई थी। पहाड़ी भाषा की किताबें प्रकाशित करने को अनुदान की योजना भी थी। उस माहौल में हमें भी कविताएँ लिखकर और किताब छपवाकर कवि होना था। सो अपनी बोली में तुकबंदी कविताओं की पांडुलिपि तैयार हो गई। इसे नाम दिया—'कूजायण' यानी अपने क्षेत्र में बसंत में खिलने वाले सबसे सुगंधित पुष्प 'कूजा' की झाड़ी। उस पांडुलिपि पर अकादमी की ओर से अनुदान भी स्वीकृत हो गया था। लेकिन छायावाद से लेकर समकालीन कविता और उसकी समीक्षा पढ़कर नज़रिया ही बदल गया। सोचा, मेरे छोटे-से क्षेत्र की बोली में ये तुकबंदी कौन पढ़ेगा? 'कूजायण' का प्रकाशन स्थगित कर दिया। निराला से लेकर शमशेर और केदारनाथ सिंह तक अनेक कवियों ने दिशाबोध कराया।

उस आठवें दशक में हिन्दी कवियों की चार पीढ़ियाँ एक साथ रचनारत थीं। प्रगतिशील कविता के दौर के वरिष्ठ कवि नागार्जुन, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन अपने बाद की तीन पीढ़ियों के कवियों के साथ देश-काल में ढलकर कविताएँ लिख रहे थे। उनसे बाद की पीढ़ी के स्थापित कवि रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वर और कुंवर नारायण आदि सक्रिय थे। तीसरी पीढ़ी 'युवा कविता' से थी। इनमें देवेन्द्र कुमार, वेणु गोपाल, विजयेन्द्र, कुमार विकल, लीलाधर जगूड़ी, चंद्रकांत देवताले, प्रयाग शुक्ल व विनोद कुमार शुक्ल आदि अपने खास तेवर के साथ चर्चित हुए थे। और चौथी वह पीढ़ी, जिन कवियों के संग्रह आठवें दशक में ही प्रकाशित और चर्चित हुए थे। इनमें मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, गिरधर राठी, अरुण कमल, विष्णु नागर, सोमदत्त, ज्ञानेन्द्रपति, भगवत रावत, ऋतुराज, असद ज़ैदी, अवधेश कुमार और नरेन्द्र जैन आदि कवि थे जो बाद में 'आठवें दशक के कवि' कहलाए।

इस दशक की कविता के पास पूर्ववर्ती कविता की तरह किसी धारा या आन्दोलन का नाम नहीं रहा। सो अब आधी सदी बीतने पर भी यह 'समकालीन कविता' जारी है। ये महज़ कवियों के नाम गिनाने की बात नहीं है, बल्कि प्रदेश से बाहर की कविता का अपेक्षित माहौल दर्शाने की कोशिश है। राजनीतिक चेतना से सम्पन्न यह कविता ही आगे चलकर हिमाचल की समकालीन कविता के लिए मशाल बनती है।

अब प्रदेश के माहौल की बात करें तो यहाँ साहित्यिक गतिविधियाँ अकादमी और

भाषा-संस्कृति विभाग के दायित्व में थी। मगर यहाँ भाषा की समस्या खास थी। शिमला, नाहन, मण्डी आदि नगरों में ही कुछ हिन्दी पढ़े-लिखे लोग थे। बाकी जनता विभिन्न बोलियों में बंटी थी। इन बोलियों के छोटे-छोटे आकाश थे। साल में एक-दो बार कुछ कवि-लेखक गोष्ठियों के बहाने मिल पाते। वहाँ भी हिन्दी बनाम पहाड़ी का झगड़ा शुरू हो जाता। ऐसे माहौल में अकादमी की ओर से 'श्यामला' नामक हिन्दी कविता संग्रह, चर्चित कवि अनिल राकेशी के संपादन में वर्ष 1976 में प्रकाशित किया गया, जिसमें—पद्म गुप्त अमिताभ, कैलाश भारद्वाज, चतुर सिंह, ज़िया सिद्दीकी, नरेश कुमार, परमानंद शर्मा, पीयूष गुलेरी, रामकृष्ण कौशल, रामदयाल नीरज, श्रीनिवास श्रीकांत, सत्येन्द्र शर्मा, सुंदर लोहिया और अनिल राकेशी—ये तेरह कवि शामिल थे। स्पष्ट है कि आठवें दशक के मध्य में जब देश की समकालीन हिन्दी कविता में चार पीढ़ियों के सशक्त कवि एक साथ रचनारत थे, उसी दौर में प्रकाशित हिमाचल अकादमी के प्रतिनिधि संग्रह में अधिकांश गीतकार थे। महज़ गोष्ठियों के लिए लिखने वाले भी कम न थे। इनमें मुश्किल से तीन-चार ही ऐसे कवि थे, आगे चलकर जिनके अपने कविता संग्रह निकले हैं। जाहिर है समकालीन मुहावरे में लिखने वाले कवियों का अभाव था। फिर बकौल 'श्यामला' संपादक, अकादमी के सदस्यों को भी इन कवियों में शामिल करना होता था।

दरअसल हिमाचल की जनता ही तब भाषा की दुविधा में थी। एक उसे अपनी बोली-बानी और लोक साहित्य से विरासती लगाव था, दूसरा विभिन्न बोली-क्षेत्रों के पारस्परिक व्यवहार और बाहरी मैदानी राज्यों से जुड़ने के लिए एक सम्पर्क भाषा की ज़रूरत थी। पूर्ण राज्यत्व मिलने के बाद डॉ. परमार जैसे बुद्धिजीवी शासक ने भी खुलते पहाड़ों के लिए हिन्दी की ज़रूरत को महसूस कर लिया था। हिमाचल की जनता ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए महज़ तीन दशकों की अवधि में ही हिन्दी को सीखकर अपना लिया। यही सम्पर्क भाषा यहाँ साहित्य की भाषा हो गई। यही कारण रहा कि नौवां दशक हिमाचल के छोटे आकाश तले हिन्दी कविता या हिन्दी साहित्य के अभ्युदय के लिए कारगर साबित हुआ। वैसे जिस तरह उन पहाड़ों पर बसंत देर से आता है उसी तरह साहित्य व कला की हर विधा विलम्ब से पहुँचती है। भौगोलिक कठिनाई के रहते गुज़रे दौर में जनसंचार और संवाद का अभाव इसमें मुख्य कारण रहा है।

दो

हमारी पीढ़ी की हिन्दी कविता के जो बीज आठवें दशक में पड़ चुके थे वे नौवें दशक में तेज़ी से उगने लगे थे। तब तक वातावरण बदल चुका था। सन् 1938 में शिमला में हुए जिस अखिल भारतीय हिन्दी लेखक सम्मेलन में महाकवि निराला सहित अनेक हिन्दी साहित्य सेवी पधारे थे, उसकी स्मृति भी मिटने लगी थी। लेकिन नौवां दशक हिमाचल में हिन्दी साहित्य सम्बन्धी गतिविधियों से भरा रहा। सन् 1980 में नवगठित 'अर्पणा' संस्था की ओर से शिमला में अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन किया गया जिसमें गंगा प्रसाद विमल और प्रयाग शुक्ल आदि कवि शामिल थे। उसके बाद 1983 और 1985 में 'शिखर' संस्था की ओर से यादगार अखिल भारतीय हिन्दी लेखक सम्मेलन आयोजित किए गए। इन सम्मेलनों में ही पुस्तक खरीद, पुरस्कार आदि योजनाओं की घोषणाएँ हुई। ग्रेंड होटल में पहला

पुस्तक मेला लगा। प्रकाशक हिमाचली लेखकों की पांडुलिपियाँ खोजकर ले गए।

अगस्त, 1986 में किन्नौर के भावानगर में 'किन्नौर कविता शिविर' का आयोजन हुआ, जिसमें प्रतिनिधि हिमाचली कवियों के साथ लीलाधर जगूड़ी, नंद किशोर आचार्य और अरुण कमल जैसे चर्चित कवि भी शामिल हुए। इससे पूर्व मार्च, 1985 में साहित्य की पत्रिका 'विपाशा' का प्रकाशन शुरू हो गया था। सन् 1984 में कवि अवधेश कुमार की परिकल्पना और आलेख पर आधारित अनूठा 'काव्य मंचन' श्रीश डोभाल के निर्देशन में हुआ था। 'सवाल' नाम के इस काव्य मंचन में महाराज कृष्ण काव, केशव, आनंद बंसल, सुंदर लोहिया, तुलसी रमण, ओम प्रकाश सारस्वत, श्रीनिवास श्रीकांत और ज़िया सिद्दीकी की हिन्दी कविताओं का उपयोग किया गया था। इसी दौरान दिल्ली की एक संस्था ने हिमाचल भवन में सात हिमाचली हिन्दी कवियों का कविता पाठ करवाया था।

जून, 1987 में मध्यप्रदेश के पन्द्रह कवि-लेखकों का एक दल अशोक वाजपेयी के नेतृत्व में हिमाचल की 'सृजनानुभव यात्रा' पर आया था। शिमला, मण्डी और धर्मशाला में उन अतिथि लेखकों के रचना पाठ के कार्यक्रम हिमाचली लेखकों के साथ करवाए गए। सन् 1988 की सर्दियों में 15 कवि-लेखकों का दल मध्य प्रदेश की 'सृजनानुभव यात्रा' पर गया। उज्जैन, भोपाल और जबलपुर में तीन आयोजन मध्य प्रदेश के लेखकों के साथ हुए। जनवरी, 1989 में भारत भवन, भोपाल में 'वागर्थ-विश्व कविता उत्सव' का आयोजन था। उसका साक्षात् पाने के लिए भी प्रदेश के कवियों को भेजा गया था। इसी तरह हरियाणा, और दिल्ली राज्य की अकादमियों के साथ भी साहित्यिक आदान-प्रदान के आयोजन हुए।

इन सारे आयोजनों के माध्यम से छोटे आकाश के कवियों का संवाद और संसर्ग विभिन्न राज्यों के कवियों के साथ संभव हुआ। संचार के साथ हिमाचल की घाटियाँ कविता में भी खुलने लगीं। यह महज़ संयोग नहीं था कि 1985 में कवि अरविंद रंचन द्वारा संपादित संग्रह का नाम ही 'खुल रहे पहाड़' था, जिसमें अनूप सेठी, आनंद बंसल, केशव कुमार कृष्ण, तुलसी रमण, महाराज कृष्ण काव, मधुकर भारती, रेखा और अरविंद रंचन की रचनाएँ संकलित थीं। उसके बाद वर्ष 1986 में वरिष्ठ कवि श्रीनिवास श्रीकांत के संपादन में महत्त्वपूर्ण संग्रह 'एक भूखंड' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, जिसमें केशव, अमिताभ, देव बड़ोतरा, अरविंद रंचन, दीनू कश्यप, रेखा, अवतार एनगिल, सतीश धर, तुलसी रमण, महाराज कृष्ण काव और वरयाम सिंह शामिल थे। कुछ इसी क्रम में हमारी पीढ़ी की हिन्दी कविता समग्र हिन्दी कविता के बीच दस्तक देती है। अनेक संग्रह छपे, चर्चित हुए। हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं में हिमाचल के कवि छपने लगे।

समग्र हिन्दी कविता, हिमाचली हिन्दी कविता के प्रति उदासीन कैसे रह सकती है? जबकि इस कविता ने समग्र हिन्दी कविता में पश्चिमी हिमालयी प्रकृति, लोक भाषा और यहाँ के जीवन और समाज के संघर्ष के आयाम जोड़े हैं। मुझे याद है जब पुणे के एक विशाल काव्य पाठ में मैंने 'लाहुल पुराण' कविता पढ़ी तो कवि नरेश सक्सेना व नीलाभ सहित कई लोगों ने उसकी प्रतियाँ मांगी।

पड़ोसी राज्य उत्तराखण्ड की स्थिति हिमाचल की तरह घाटियों में बंद रचनाकारों की नहीं रही। वहाँ के बड़े कवि लीलाधर जगूड़ी, मंगलेश डबराल व वीरेन डंगवाल सहित दिल्ली,

बनारस, लखनऊ, भोपाल, बरेली व देहरादून में रहे, बसे हैं। हिन्दी उनकी विरासती भाषा है। पहाड़ उनकी स्मृतियों में है। मनीआर्डर इकानमी के उस समाज के ज़्यादातर लेखक दिल्ली आदि मैदानी शहरों में रहते आए हैं जबकि हिमाचल के लेखक खुले मैदानों तक आज भी कहाँ जा पाते हैं। वरयाम सिंह, अनूप सेठी, सतीश धर आदि कुछ ही अपवाद स्वरूप हैं।

तीन

ये बिन्दु पहले के विवरण में भी आ चुके हैं मगर फिर कहा जा सकता है कि गीतकार कवि अधिक सक्रिय थे। वे मैदानों से हिन्दी सीखकर लाए थे। इसलिए यहाँ हिन्दी साहित्यकारों में अग्रणी भी थे। किशोर अवस्था में नीरज और श्रीनिवास कई प्रदेशों में रहे। ग़ज़ल कार-कवि ज़िया सिद्दीकी ने मुक्तिबोध के साथ काम किया था। सत्येन और राकेशी देहरादून, उत्तर प्रदेश के माहौल से सराबोर थे। सुन्दर लोहिया, मोहन राकेश के संसर्ग में रहे थे। इन लोगों ने 'हिमप्रस्थ' के घेरे में साहित्य का माहौल बनाया था। गीत ज़्यादातर गोष्ठियों के उद्देश्य से लिखे जाते रहे। जब नया गीत नहीं बना तो पुराना ही सुना दिया। कई गीत तो ऐसे थे कि दुहराव के साथ श्रोताओं को याद हो चुके थे। मगर ये गीतकार कम दिलचस्प न थे। आशु कविता भी कर लेते थे। 'मधुशाला' प्रिय इन कवियों को संगीत और भाषा का अच्छा ज्ञान था। श्रीनिवास की भावाभिव्यक्ति का लालित्य और सत्येन, नीरज तथा लोहिया का व्यंग्य गहरा प्रभाव छोड़ता रहा।

हमारी समकालीन पीढ़ी आठवें दशक की कविता से प्रभावित रही है। मगर कुछ कवि चर्चित हिन्दी कवियों से इतने आकृष्ट हुए कि इससे उनका अपना किया भी दबता रहा। धूमिल, जगूड़ी, केदारनाथ सिंह तथा कुमार विकल जैसे कवियों के शब्द-बिम्ब, प्रतीक, कथन शैली और भाषा के तेवर उन्होंने इस कदर अपनाए कि साफ नज़र आते रहे। एक प्रवृत्ति यह भी रही कि कुछ नयी कविताएँ लिखकर, उतनी ही पुराने संग्रह से लेकर नई किताब बनाते रहे। हमारी पीढ़ी के कुछ कहानीकारों ने भी मंच के मोह में आकर कविता लिखना शुरू किया, लेकिन उनका स्वभाव कहानी कहने का ही बना रहा। इस अनुभव से आभास होता है कि कवि जब कहानी लिखता है तो वह कवि का अनूठा फिक्शन हो जाता है, लेकिन कहानीकार की कविता ज़बरन गढ़ी नज़र आती है। इस सबके बावजूद यह कहना उचित होगा कि हमारी पीढ़ी से करीब बीस ऐसे कवि सामने आए हैं, जिन्होंने समग्र हिन्दी कविता में हिमाचल की उपस्थिति दर्ज कराई है।

पत्रिका के संपादन से जुड़े होने के दौरान बाद की पीढ़ी की कविता पढ़ने का अवसर मिला। इनमें कुछ ऐसे भी कवि नज़र आते हैं जो किसी पुरस्कृत कवि की चर्चित किताब पढ़कर उसके काव्य मुहावरे को लपकने की कोशिश में रहते हैं। ऐसी कविताओं में कथ्य भले ही स्थानिक हो, लेकिन अभिव्यक्ति शैली के कारण वे कहीं पढ़ी हुई मालूम देती हैं। कविता-भाषा का यह सामान्यकरण रचना को कमज़ोर करता है। बाद की पीढ़ी के कई कवियों में रचनाकार का संघर्ष या उसका सृजनात्मक दबाव नज़र नहीं आता, बल्कि वे कवि होने के लिए या कहीं पाठ के लिए सायास लिखते प्रतीत होते हैं। इधर हमारी अकादमी और विभाग ने ऐसे कवित्व रहित कवियों की बड़ी जमात तैयार कर ली है जो छोटे से लेकर बड़े आयोजनों में आत्म मुग्धता के साथ अक्सर दिखाई देते हैं। इनकी रचनाओं में कथ्य कविता से आगे

चलता नज़र आता है और वर्णन प्रियता हावी रहती है।

लेकिन इस पीढ़ी में ऐसे भी अनेक कवि हैं जो अच्छा पढ़ते हैं और उनकी रचना में मौलिक अनुभव व्यक्त होता है। वे अपने परिवेश और समाज के बीच से समाजार्थिक, राजनीतिक व वैचारिक समझ के साथ बेहतरीन कविता निकाल लाते हैं और सफल कवि होने की ओर अग्रसर हैं। इनमें मोहन साहिल, नवनीत शर्मा, अजेय, विक्रम मुसाफिर और प्रदीप सैनी जैसे अनेक कवि हैं, जो बराबर आश्वस्त करते हैं।

चार

प्रश्न की यह धारणा ग़लत है कि हमारे दौर में प्रगतिशील आंदोलन उत्कर्ष पर रहा है। इस आंदोलन का वास्तविक उभार 1936 से 1943 तक था। उसके बाद की हिन्दी कविता में प्रयोगवाद, नई कविता, साठोतरी कविता, युवा कविता, अकविता जैसी कई धाराएँ और प्रवृत्तियाँ आती रहीं। इनमें 'नई कविता' और 'साठोतरी कविता' की रचनात्मकता का विशेष महत्त्व है।

रघुवीर सहाय की पंक्तियाँ हैं—

कितना अच्छा था छायावादी
एक दुख लेकर वह गान देता था
कितना कुशल था प्रगतिवादी
हर दुख का कारण वह पहचान लेता था
कितना महान था गीतकार
जो दुख के मारे अपनी जान लेता था
कितना अकेला हूँ मैं इस समाज में
जहाँ सदा मरता है एक मतदाता।

यही रघुवीर सहाय हमारे दौर की 'समकालीन कविता' के प्रेरक कवियों में अग्रणी रहे हैं।

प्रगतिवादी दौर में मार्क्सवादी सिद्धांत और पार्टी से प्रतिबद्ध तथा इनसे मुक्त दोनों तरह के कवि हुए हैं। लेकिन नई कविता में वादग्रही सामाजिकता और प्रयोगवादी रूपाग्रह से मुक्ति की कोशिश में वैयक्तिकता और सामाजिकता के समन्वय का प्रयास रहा। आगे चलकर आठवें दशक की 'समकालीन कविता' के दौर में मुक्तिबोध का रचना-कर्म सर्वाधिक चर्चित रहा और धूमिल के काव्य मुहावरे का भी विशेष प्रभाव रहा। आठवें दशक में आकर कविता में प्रतिबद्धता का अर्थ ही बदल गया। अब कविता की प्रतिबद्धता किसी विचारधारा में नहीं, बल्कि आम आदमी की ज़िंदगी से गहरे लगाव में मानी जाने लगी।

यह बात उल्लेखनीय है कि किसी आंदोलन विशेष के पीछे छूट जाने से विचारधारा का लोप नहीं हो जाता। जीवनानुभव के साथ उसका प्रभाव जाग उठता है। प्रगतिशील लेखक संघ जैसे-कैसे चलता रहा। 1980 में शिमला तथा 2004 में मंडी में भी इसके सम्मेलन हुए। जनवादी लेखक संघ भी समांतर सक्रिय हुआ। हिमाचल की काव्य चेतना पर इसका पर्याप्त प्रभाव रहा है। वरयाम सिंह, दीनू कश्यप, यादवेन्द्र शर्मा और सुन्दर लोहिया आदि लेखक विचारधारा से जुड़े रहे हैं। अपनी कविता पर इसका क्या प्रभाव रहा, यह समीक्षकों व पाठकों

के देखने का है। इतना स्पष्ट है कि स्वभाव से ही प्रतिक्रियावादी और संप्रदायवादी नहीं हूँ। जन सामान्य के संघर्षपूर्ण जीवन की विडंबना, हर तरह के शोषण तथा साम्प्रदायिक व जातिवादी राजनीति के विरोध, प्रकृति और मनुष्य के शाश्वत सम्बंध जैसे विषय लिखने को प्रेरित करते हैं। लोक सम्पृक्ति के साथ रचना में प्रेम को कभी वर्जित विषय नहीं माना।

पाँच 'स्त्री विमर्श' से सम्बन्धित इस विस्तृत प्रश्न की हिमाचल की कविता को लेकर प्रासंगिकता नज़र नहीं आती। रेखा, सरोज परमार और रेखा ढडवाल जैसी कुछ रचनाकर ही हैं जिन्होंने कविता विधा को गम्भीरता से लिया है लेकिन इन्होंने भी 'स्त्री विमर्श' के गणित से शायद नहीं लिखा। स्त्री मन की सघन अभिव्यक्ति रेखा की कविता में है। इक्कीसवीं सदी में छुटपुट लेखन से आगे बढ़कर स्त्री रचनाकारों के संग्रह चर्चा में आएँ तो विमर्श की बात हो। वैसे चलन के अनुकरण में हमारे यहाँ भी महिला लेखक सम्मेलन करवाए गए हैं। उनका हासिल क्या रहा, समझ से बाहर है। इस प्रश्न से मेरे ध्यान में आया कि हिमाचल में पुरुष कवियों ने स्त्री विषयक कविताएँ बहुतायत में लिखी है। इनमें हम स्वयं शामिल हैं। माँ, पत्नी, बेटी, बहिन, प्रेमिका और पहाड़ की कर्मठ महिलाओं को लेकर महत्त्वपूर्ण रचनाएँ आती रही हैं।

छह

टेकनालाजी, इंटरनेट और सोशल मीडिया ने हिमाचल जैसे कठिन भूगोल के अलग-अलग क्षेत्रों में लेखकों-पाठकों को घर बैठे अध्ययन, संवाद की अनेक सुविधाएँ प्रदान की हैं। विचार-विनिमय के साधन हाथ आए हैं। देश-विदेश के कवियों की कविताएँ लगातार पढ़ने को मिल रही हैं। मंगलेश डबराल, असद ज़ैदी, स्वप्निल श्रीवास्तव और विनोद दास जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण कवियों की रचनाएँ और विश्व कविता के अनुवाद इन माध्यमों से पढ़ने को मिले तो घर में गंगा आ गई। ये छपी हुई कविता के अतिरिक्त सुविधा है, लेकिन पुस्तक या पत्रिका में प्रकाशित कविता का स्थायी महत्त्व है। कोई अच्छा कविता संग्रह सिरहाने में रहे तो मन भरा रहता है। मगर इन माध्यमों का इस्तेमाल आत्म-प्रचार के लिए ज़्यादा हो रहा है और फिर 'लाइक' का चलन है। समीक्षात्मक बात कम होती है। सो अच्छा-बुरा गड्डमड्ड हो जाता है। बेहतर की तलाश में काफी समय नष्ट होता है।

सात

खाद-पानी मिलने का कोई अलग मुकाम नहीं है। प्रकृति और भौगोलिक स्थिति के बीच मनुष्य जीवन का निरंतर संघर्ष नज़र में रहता है। लोक जीवन की अपनी विरासत है जो आज के मनुष्य को फिर-फिर पकड़ लेती है। इसमें भला-बुरा बहुत कुछ है। अच्छा साहित्य तो प्रेरित करता ही है। हम उससे कटकर क्या रच सकते हैं? सृजन का प्रवाह निरंतरता में चलता है।

आठ

प्रेरणा स्रोतों का उल्लेख उक्त खाद-पानी के साथ हो गया। जहाँ तक कवियों और कविताओं में पसंद का सवाल है। भक्तिकाल मे कबीर, छायावाद में निराला और प्रसाद मेरे प्रिय कवि रहे हैं। निराला की भिक्षुक, तोड़ती पत्थर और सरोज-स्मृति जैसी कविताएँ कभी नहीं भूल सकतीं और प्रसाद की कामायनी। प्रगतिशील दौर के चारों बड़े कवि मेरे प्रिय रहे

हैं, लेकिन नागार्जुन और शमशेर को बार-बार पढ़ता रहा हूँ।

'लौट आ, ओ फूल की पंखड़ी
फिर फूल से लग जा'
'हो चुकी जब खत्म अपनी जिंदगी की दास्ताँ,
उनकी फरमाइश हुई है, इसको दोबारा कहें।'

— शमशेर

'दाने आये घर के अंदर कई दिनों के बाद,
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद'

— नागार्जुन

इसके बाद 'नयी कविता' के दौर में रघुवीर सहाय और केदारनाथ सिंह मेरे प्रिय कवि हैं। रघुवीर सहाय की स्त्री विषयक कविताएँ अनूठी हैं और केदार जी के संग्रहों की अनेक कविताएँ अनुपम हैं। विपाशा में प्रकाशित उनकी 'बाघ' और 'मनाली' शीर्षक रचनाएँ ही देख लें। समकालीन कवियों में मंगलेश डबराल, अरुण कमल, सोमदत्त, ज्ञानेन्द्रपति, असद ज़ैदी और अवधेश कुमार आदि अनेक मेरे प्रिय कवि हैं।

नौ

युवतम पीढ़ी को संदेश देने योग्य अपने को नहीं पाता हूँ, बल्कि खुद उनसे संदेश लेने की स्थिति में हूँ। इनमें अनेक इतने आत्म-मुग्ध और आत्म-प्रचार प्रिय हो गए हैं कि आत्म-विचार या विश्लेषण की कोई गुंजाइश नहीं। यह स्थिति नासमझ आयोजकों, दयालु संपादकों और मैत्री निभाने वाले समीक्षकों के कारण बनी है। आदिकाल से लेकर अद्यतन कविता तक गहन अध्ययन और समझ के बिना सफल कवि नहीं हुआ जा सकता। चंद पत्रिकाएँ और पुरस्कृत संग्रह पलटकर कविताएँ रचने बैठ जाना पर्याप्त नहीं है। जीवन और विचार की समझ के लिए इतिहास व आलोचना को पढ़ना ज़रूरी है। जब तक पुस्तकों को पढ़ने के साथ उन पर विभिन्न समीक्षाएँ न पढ़ ली जाएँ, मुक्तिबोध और रघुवीर सहाय जैसे कवि समझ नहीं आएँगे। जो युवा निरंतर अध्ययनशील हैं, उनसे हम सबक ले सकते हैं, मसलन विक्रम मुसाफिर...।

['दयार', दुर्गा कॉलोनी, ढली, शिमला-171012]

मो. 94180 86986

दो कविताएँ

❑ सुंदर लोहिया

मौसम और माहौल

इस मौसम का क्या करें मेरे दोस्त
जो सावन में हंसता है
फागुन में बरसता है
मौसम और मनुष्य में
आदिम शत्रुता है
इसलिए आओ
माहौल की बात करें।

तुम जानते हो
कविता मेरे लिए शौक नहीं
शौकिया श्रोताओं का मनोरंजन करते
कविता पढ़ते
मुझे ईसा के लास्ट सपर का सुख मिलता है
इसके बाद
मुझे मालूम है
अपने कवि की सलीब
अपने कंधों ढोनी होगी

सर्दियों के बदलाये आसमान के
मनहूस माहौल में आदमी
कब तक जी सकता है
ज़िन्दगी की सारी आग जहाँ
रोटियाँ सेंकने में खर्च हो जाये
वहाँ लोग अभी भी
मौसम को गालियाँ देते हैं

जो सावन में हंसता है
फागुन में बरसता है।

इक्कीसवीं सदी

इक्कीसवीं सदी के लोग भूल जायेंगे
बसंत क्या होता है
इतनी-सी धरती नहीं बचेगी
जहाँ बसंत फूलों की टोकरी रख सके
कोयल के लिए नहीं बचेगी कोई एक डार
सब जगह खड़े होंगे
कंक्रीट के कनकौवे आसमान को चीरते हुए
इनके बिलों में घुसते नज़र आयेंगे आदमी
आदमी ही आदमी
और कोई दूसरा जानवर
कहीं भी नज़र नहीं आयेगा।

तब हे ऋतुराज
तुम बेध न पाओगे किसी का हृदय
रत्ती भर कोमलता नहीं बची होगी
पूरी पृथ्वी पर।

बाकी ऋतुओं का क्या है
वे आती रहेंगी, जाती रहेंगी
हाँ पावस ज़रूर पछाड़ खायेगी
उसे भी धरती की प्यासी गोद नहीं मिलेगी
वह किसी छत पर सर पटक-पटक
बह जाएगी।

पर कोई सुनेगा नहीं
जैसे जलती हुई बहू की चीख़
दूर तक फैलकर भी अनसुनी रह जाती है

इस सारी तबाही के बीच
यह बाघिन सदी
चाट रही अपने नासूर
बघेलों को दूध पिलाते हुए

पीछे देख रही धुआँ उगलता जंगल
लपलपाती आग का सरकता शोर
आगे वेगवती नदी का उफान
लेकिन उस पार छाया सघन निर्धूम जंगल
औ' इस तरफ भूखे भेड़ियों के झुण्ड-सा
बढ़ रहा जंगली आग का घेरा
झुलसे पक्षियों की माँसगंध
भागते पाँवों की चीखें
घायल बाघिन उधर देखती है
देखती है औ' गुर्राती है
लाद कर बघेलों को पीठ पर
उफनती नदी में कूद जाती है
और नहीं कुछ
सिर्फ ममता ही बचा पायेगी
इस धरती पर
जीवन की किलकारी।

जन्म 1933, पैतृक गाँव मण्डी, जिला मण्डी, हि.प्र.
[मकान नं. 47/10, खनक गली, मण्डी, हि.प्र.-175001]

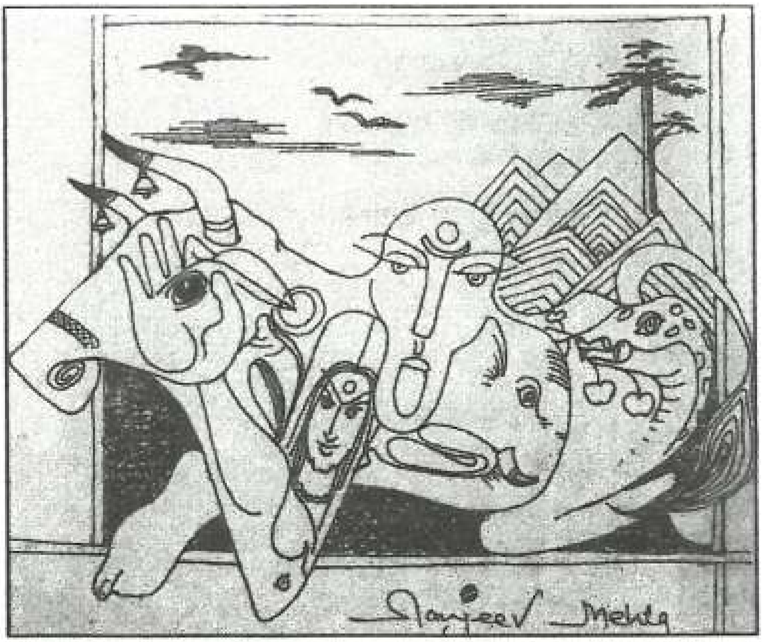

दो कविताएँ

❑ चतुर सिंह

बुधुआ का घर

पर्वत के पार्श्व में
बसे गाँव
टूटी-फूटी अधनंगी झोंपड़ी में
बुधुआ के घर में
अंधकार से लड़ती
चूल्हे में जलती है लकड़ी
और छाती से चिपका
सूखापन चूस रहा
एक नन्हा अश्वथामा
लेकिन गुरू द्रोण के चेहरे पर
चमक रही सपनीली समृद्धि
पतझर-सी गायब हैं
होंठों की बासंती मुस्कानें
चंदन-सी काया पड़ गयी काली
बहुत भयभीत है
करमजली बुधुआ की घरवाली
1985

कुरुक्षेत्र

न जाने कौन-सा रहस्य था
कि गूंगा ही बनाए रखा
सारे महाभारत में
केशव ने अर्जुन को

केवल उसके इशारों पर ही

उठतीं थीं भुजाएँ
सव्यसाची की
और गाती थी उसी के संकेतों पर
गांडीव की प्रत्यंचा
शायद इसलिए कि
युद्ध की अनिवार्यता पर लग जाए
जन सहमति की मोहर
संदर्भ बदल चुके हैं बेशक
अपेक्षित है उन्हें कि
हो जाए समूचा विश्व गूंगा
उनके सामने
जो कृष्ण होना चाहते हैं
लेकिन नहीं हो सकेगा गूंगा
हरेक मुँह

गुज़र जाए सारी उम्र कारा में
नहीं बनेगा सव्यसाची
नेल्सन मंडेला
1988

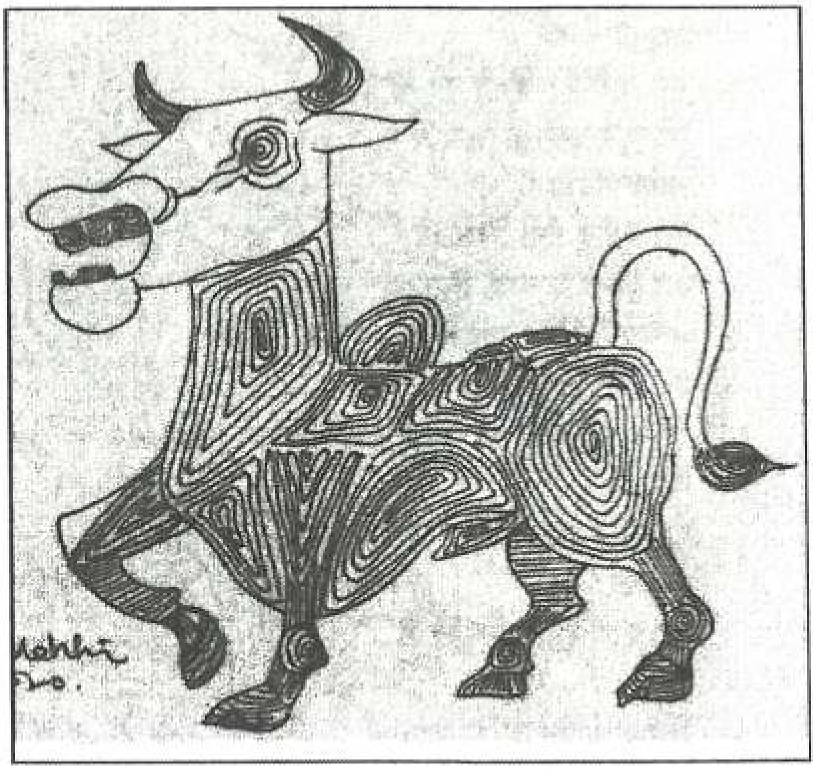

दो कविताएँ

❑ प्रकाश पंत

बच्चे, बीवी और मैं

मत छीनो
अभी से इनका बचपन
इन्हें मत बनाओ
पत्थर की मूर्ति
इन्हें रंग-बिरंगे पतंगों और
फूलों से लगाव है
इन्हें नोचने दो ये रंग

वक्त बड़ा खराब चल रहा है
और तुम पढ़ा रही हो
अशोक महान् थे
मत करो मेरे बच्चों को बौना
जो कुछ तुम्हारी रसोई में है
स्वादु, सर्वश्रेष्ठ
निस्संकोच इन्हें खिलाओ
मत जोड़ो कल के लिए
मत बनो इनके भविष्य के ठेकेदार
इन्हें मत दिखाओ
अपने जूते की नाप
व्यर्थ में
मत करो इन्हें अपने ही विरुद्ध
ये बच्चे
तुम्हारे ठहरे देश से बड़े हैं

अशोक महान् के बदले

इन्हें दिखाओ—
नदी
समुद्र
आकाश
और पक्षी को परवाज़
1987

पृथ्वी

माँ की छाती-सी कोमल
पवित्र
पिता की पीठ-सी ठोस
कद्दावर
मेरी यह पृथ्वी
समुद्र में तैरती रहती है
मेरे हाथ इसे थपथपाते रहते हैं

इस तरह यह पृथ्वी—
धीरे-धीरे
मेरे भीतर आ बसती है चुपचाप
1989

पैतृक गाँव मण्डी, ज़िला मण्डी, हि.प्र.
[196/10 बनेड़ा, मण्डी, ज़िला मण्डी, हि.प्र.]

दो कविताएँ

❑ ज़िया सिद्दिकी

बज़ीरन की समस्या

बज़ीरन लीपती है
जब भी अपनी झोपड़ी का फर्श
मिट्टी से
तो कोने में
खुद अपने आप से नज़रें बचाकर
छाप देती है
खुद अपनी ही हथेली को
और ढक देती है उसको
धुआँ खाए हुए आटे के डिब्बे से
जो भरता कम है खाली ज़्यादा होता है
उसे मालूम हो जैसे कि उसके हाथ में
आटे की रेखा
बनते-बनते मिट गई थी
वह जब पैदा हुई थी

वज़ीरन
वह जब पैदा हुई थी
तभी से उसका रिश्ता
सिर्फ मिट्टी से रहा है
वही उसका बिछौना
वही उसका सिरहाना
वही उसका घरौंदा
वही उसका खिलौना

वज़ीरन

वह अपने आपको मिट्टी समझती है
मगर खुश है
वज़ीरन एक औरत ही नहीं
एक स्थिति है
जो जाने कितनी सदियों से
यूँ ही अब भी बनी है
वज़ीरन को मगर मिट्टी से अपनी प्यार है
और बस

यही उसकी समस्या है
वह मिट्टी खा नहीं सकती
कि वह उसकी सहेली है।
1989

आकांक्षा

पहले-पहल
जब मैंने कहा था
उस विस्तृत वन-खण्ड में
एक वृक्ष मेरा भी है
तो वो खूब ज़ोर से हंसे थे

वो तब भी हंस रहे थे
जब मैं भागा था
अपने जलते हुए घर से लेकर
मिट्टी के तेल का डिब्बा
जिसे मैंने
सबसे मुश्किल से हासिल किया था
मैं तब बहुत दुःखी हुआ

लेकिन जब से मैं कामयाब हुआ हूँ
उड़ाने में
उस ऐयाश मुर्ग की गर्दन
जो रात गए बांग देता था
मेरे भीतर
तब से बन्द हो गया है
मेरे मस्तिष्क की दीवारों पर

सुबह गए तक चलता
छायाकृतियों का नग्न नर्तन
मैंने अपनी ज़िन्दगी में
कभी कोई ताबीज़ नहीं पहना
शायद इसीलिए निरन्तर सोच बन गई है
मेरे दिमाग का गहना
जब भी गश्त पर निकलती है सोच
मार लाती है एक नई खरोंच

मुझे याद है
उस दिन मैं
उनके जाल में खूब फंसा था
जब मैं उन पर पहली बार हंसा था

हुआ यूँ
मैंने उनसे माँगी
उनके तहखाने की कुंजी

उन्होंने दे दी मुझे
अपने अन्तरिक्षयान की चाबी
और देखिये मेरी बेताबी
उनकी मूर्खता पर हंसता हुआ
मैं कई बार घूम आया
ख़लाओं में
सोचकर
कि उनका तहखाना वहीं होगा
अब स्थिति यह है
कि मुझे चाहिए
थोड़ा-सा अन्न
थोड़ी-सी ऑक्सीजन
एक ऐसा वन
जिस में एक वृक्ष मेरा भी हो।
1989

देहान्त 2022,

दो कविताएँ

❑ केशव

एक

मुझे नहीं होना है जंगल
बार-बार क्यों बुलाते हो
अपने पास
मुझे होने दो
अपने में ही घना
और घना
ताकि सौंप सकूँ
खुद को
आँधी
पानी में भी
निर्व्याज
1987

दो

सुनो दोस्त
तुम गाली देकर
नहीं बदल सकते
जंगल का स्वभाव
सुनो तुम
अपने अंदर सोये
शब्दों को नहीं
अनुभवों को जगाओ
फिर तान दो उन्हें
एक तम्बू की तरह
जिसके नीचे बैठकर

भले ही अपने-अपने कंठ से
फिर मिलकर गाओ
वर्षा में धुलती पानी की तरह
थरथराने लगेगी तुम्हारी आत्मा
एक-एक थरथराहट
तुम्हें दिखाएगी
अपने आइने में
ऐसी-ऐसी दुनियाएँ
जहाँ सूरज
अक्सर लापता रहता है
जहाँ अंधेरा ही
अंधेरे की बात
सुनता
कहता है

सुनो दोस्त
तुम उन शब्दों को
मत रहने दो अंदर
जिनके सहारे तुम
पहुँच नहीं सकते कहीं
जो तुम्हारे हाथों को
बदल नहीं सकते चप्पुओं में
जिनसे तुम
सारी तलछट को
पीछे छोड़
पहुँच सकते हो
गहरे समुद्र में
कुछ ऐसा करो दोस्त
कि जंगल को
आरियों जैसे
दिखने लगें तुम्हारे हाथ
और तुम्हारी आत्मा
एक लपट जैसी

1987

जन्म 1949, पैतृक गाँव राजपुर, जिला कांगड़ा, हि.प्र.

[गीता कुंज, शहतूत फार्म के निकट, राजपुर, पालमपुर, हि.प्र.-176027]

मो. 78768 58069

दो कविताएँ

□ कृष्ण कुमार वैद्य

विपाशा

कभी बहती थी
मेरे नगर से होकर विपाशा
कर लिया गया अपहरण
वह छिन गई हमसे
अभी भी
कृषकाय
अपने अस्तित्व का
देती है अहसास
किनारे उदास-उदास
आ गये हैं पास-पास
विपाशा
जिसके साथ-साथ
बनाए थे घर
मेरे पुरखों ने
बसाया था छोटा-सा शहर
अब वह
बांध को फुसलाकर
झलक-सी दे जाती है
अभी तक अतीत उसे है याद

झूलता विशाल पुल
किनारे पर मन्दिरों की
घंटियों का निनाद
इसी तरह छिन जायँगी ये नदियाँ
लुट जाएँगे नाले

बसी हुई वादियाँ
सज चुका बाज़ार
लग रही हैं बोलियाँ।

आतंकित पहाड़

हो चुकी है मुनादी
नीलामी पर आ रहे हैं
बड़े-बड़े सौदागर।

पहाड़ों से छिन जाएँगे
उन पर उगे पेड़
बसे हुए घर।

खो देंगी नदियाँ
अंधी सुरंगों में कैद होकर
अपना राज

सौदागर लौट जाएँगे
बच्चे, पापा से पूछेंगे?
कैसी होती थीं नदियाँ?
कहाँ होते थे पहाड़?
1994

जन्म 1947, देहांत 2022, पैतृक गाँव मण्डी, जिला मण्डी, हि.प्र.

उस दिन

❑ एस. अतुल अंशुमाली

मैं नदी के बारे में
कुछ भी नहीं लिखूँगा
फिर भी नदी सूखती रहेगी
मेरे अन्दर

मै पहाड़ के बारे में कुछ भी
नहीं लिखूँगा
फिर भी पहाड़ टूटता रहेगा
मेरे अन्दर

लेकिन एक दिन लिखना पड़ेगा
मुझको अपने अस्तित्व के लिए
उस दिन
नदी और पहाड़ होना पड़ेगा मुझको
2022

जन्म 1988, पैतृक गाँव धमांदर, जिला हमीरपुर, हि.प्र.
[गाँव धमांदर, डाक. लाहड़, तह. नादौन, जिला हमीरपुर, हि.प्र.-177044]
मो. 98050 53640

कोई बात ना करो

❑ अनिल महंत

चुप रहो
यह दौर खामोशी का है
एक ज़माने से
जिन्हें तुम जगा रहे हो
वह सोए हैं गहरी नींद
एक ज़माने से
कत्ल इनका ही हुआ है
मरे भी यही हैं
जो तुम्हें चलते दिख रहे हैं
यह मुर्दा हैं
लहू जम गया है...रगों में
गरम भट्टी में डालकर भी
ये स्वाह नहीं होंगे
यह झुके हैं...कमर तक
हाथ इनके बंधे हैं
ये गुलाम नहीं हैं
इन्हें गुलामी पसंद है
ये अपने अधिकार बेचते हैं
सरे बाज़ार
तो कोई बात ना करो
चुप रहो
ये दौर, खामोशी का है
एक ज़माने से
2021

जन्म 1983, पैतृक गाँव मट्ट, जिला मण्डी, हि.प्र.

[414/5 मट्ट, डाक. बाड़ी गुमाणु, तह. सदर मण्डी, हि.प्र.-175001]

मो. 98579 07999

दो कविताएँ

❑ नवनीत शर्मा

वे जो बज रहे हैं

एक पूरे का पूरा 'जैसी राम'
प्राणों समेत
फूँक भरते हुए
हावी हो गया है तुरही पर
आखिर इसी से देवता चलेंगे
रुकेंगे, बैठेंगे, चलेंगे इसी से

जैसी राम और उसके साथी
चलेंगे देवता के आगे
पीछे-पीछे देवता
कारदारों और देवलुओं के साथ
साथ-साथ न चलना अलग करता है
देवताओं को बजंतरियों से
यह रेखा महीन नहीं
ब्यास जितनी चौड़ी है महाराज
इतनी कि
आए देवता पर प्रेम
तो उसे छू नहीं सकते
जगे देवता से भय
तो उसे छोड़ नहीं सकते
आए देवता पर क्रोध
तो सदियों का गुस्सा भर सकते हैं शहनाई में
सदियों का आवेग पटक सकते हैं ढोल पर
रणसिंघे के हवाले कर सकते हैं गुबार
नाच रहे हैं जलेब के साथ चले लोग

आसीन हैं पालकी पर देवता
लगभग दौड़ रहे हैं कहार
देखो मत गौर से सुनो
कितना दर्द बजा रहे हैं
खुद बज रहे बजंतरी।

2013

दिवंगत कवि के लिए

ये उन दिनों की बात है
जब मैं भी कवि था...
टोपियाँ अलग थी मेरी और उसकी
एक ही साम्य था
कि टोपी दोनों के पास थी
मैं कभी-कभी नहीं भी पहनता था

वह बहुत से लोगों से श्रेष्ठ था
हमारे बीच झगड़ा नहीं हुआ आम
पर सर्दी के भीतर की गर्मी रही

लोग मुझे बताते थे
उसने ऐसा कहा है आपके बारे में
लोग उसे भी बताते थे
मैंने ऐसा कहा है उसके बारे में
बहुत बार लोगों ने उसे वह बताया
जो मैंने नहीं कहा था
मुझे वह
जो उसने नहीं कहा था
मेरी उसकी बात जब भी हुई
इतनी सीधी और झरने जैसी कि बस
बह जाना याद रहा
बहने की आवाज़ तब नहीं आती
जब बीच में पत्थर न हो !
जब कवि मरता है
उसके दोस्तों दुश्मनों का बहुत कुछ मरता है
कुछ की घृणा
कुछ की चुप्पी

कुछ अकेले हो जाते हैं
कुछ निश्शंक
कुछ उदास हो जाते हैं
मैं सुरेश सेन के लिए उदास हूँ
निशांत के लिए नहीं !
निशांत कहीं जा सकता है भला ?
2018

जन्म 1973, पैतृक गाँव मारंडा (पालमपुर), जिला कांगड़ा, हि.प्र.
[राज्य संपादक, दैनिक जागरण धर्मशाला, हि.प्र.-176215]
मो. 70184 19751

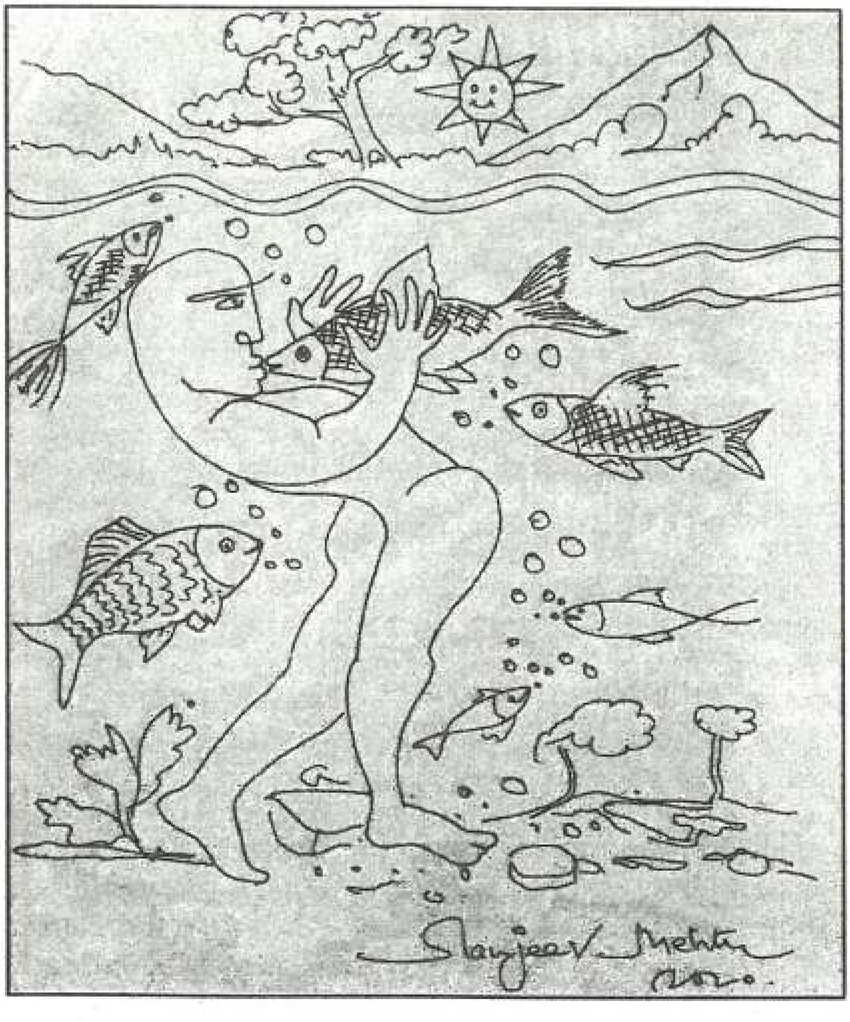

दो कविताएँ

❑ ओम भारद्वाज

गुफा

आपको मालूम होगा दोस्त
पिछले कई कालखण्डों में
सबसे सुरक्षित जगह रही है यह
अब ऐसा नहीं है
इसका कोई प्रमाण तो नहीं
जो यहाँ दिया जा सके
इतना कहा जा सकता है
जिस गुफा में धकेला है समय ने
वह अंधेरी व भयानक है
नीचे अंगारे हैं, ऊपर धुआँ
पाँव के तलवे बचाएँ या साँसें
कठिन दौर है यह
समय दे रहा है पहरा
दरवाज़े से बाहर
सूरज भी छुप-छुप कर
निकल रहा है पहाड़ के पीछे से
सात दिन हो गए
धूप कतरा रही है सामने आने से
मेरे प्रिय दोस्त!
अपनों का एहसास रह गया है मात्र
दूरियों का फाटक मिलने नहीं देता
दुर्भाग्यवश चींटियाँ गुजरती कभी यहाँ से
उन्हें भी रास्ता बदलना होता है
डर ही डर व्याप्त चारों ओर
इस डर के साम्राज्य में

समय कब लेगा करवट ?
न जाने कब
निकलेंगे हम सब बाहर
इस भयानक गुफा से
2020

आन्दोलन नहीं होने देंगे

हम इस देश में
आन्दोलन नहीं होने देंगे
बात नहीं करेंगे
सिर्फ पसीना पोछेंगे
किसानों का
मज़दूरों का
और बेरोज़गारों का
हर हाथ को काम होगा
वेतन चाहे जितना हो
हम तय करेंगे
हम तय करेंगे वे सब भी
हमारे पास आएँ तो
दरवाज़े नहीं खोलेंगे
उससे कुछ भी आ सकता है अन्दर
इस महामारी के दौर में
जिन्हें अपने सर फोड़ने हैं
चौराहे पर पटक-पटक कर फोड़ें
उनका क्या?
हम तो सेवक हैं देश के
जो हम चाहेंगे वही होगा
होना भी चाहिए
हम पर विश्वास किया है जनता ने
आवाज़ के टुकड़े-टुकड़े कर देंगे
आन्दोलन नहीं होने देंगे
2021

जन्म 1969, पैतृक गाँव जैस, जिला शिमला, हि.प्र.
[गाँव बलन, डाक. जैस, तह. ठियोग, जिला शिमला, हि.प्र.]
मो. 94181 00252

दो कविताएँ

❑ निरंजन देव शर्मा

इन्द्रधनुष और बारिश का जादू

झामाझम बरसात की बारिश है पहली
सुबह का काम निपटा कर
छत पर आ गई है लड़की
दोनों हाथ आसमान की ओर उठाए
गोल घूम रही है
मस्ती में झूम रही है
झमाझम बारिश में
तपते मौसम से गुज़रने के बाद
मानों भीग रही हो धरती

घर के काम से छूटते ही
छत पर निकल आती है लड़की
आसमान से बातें करने को
आसमान भी बादलों के जरिये
झुक आता है उसकी ओर
आसमान-बादल और पंछी
सबकी भाषा सीख चुकी है वह
बारिश और इन्द्रधनुष की भी
पहाड़ ने सिखाया है उसको
इन सबसे बातें करना
देखो-देखा
उसके झूमतेझूंमते इन्द्रधनुष निकल आता है
सतरंगी

बारिश की डोर थामे वह उतर गई है इन्द्रधनुष की पीठ पर

समेट लिए हैं उसने कुरते की जेबों में इन्द्रधनुष के तमाम रंग
इन्द्रधनुष की ढलान पर से फिसल कर
रंग बिखेरते हुए
वह उतर गई है दूसरी ओर
देख पा रहा हूँ मैं इस पार से
सीधे जा उतरी है वह पहाड़ी के उस पार
ढलवां छत वाले
स्कूल के प्रांगण में
जहाँ बिखरते हैं जीवन के सात रंग
वह सीख चुकी है जादू का यह खेल
जो पहाड़ की इस ओर की कंक्रीट की छत से
संभव होता है हर बार
बरसात के दिनों की बारिश में
2018

पेड़ बांटने वाली लड़की

वह पेड़ बांटती थी
पोथियाँ नहीं जीवन बाँचती थी
खींच देती थी एक रेखा
चली जा रही रेखा से लम्बी
यही तरीका था उसका विरोध दर्ज करने का
और जीवन के मायने खोजने का भी
2021

जन्म 1967, पैतृक गाँव कुल्लू, जिला कुल्लू, हि.प्र.
[भारत-भारती काम्पलैक्स, ढालपुर, कुल्लू, हि.प्र.-175101]
मो. 98161 36900

दस कविताएँ

❑ अरुणजीत ठाकुर

फेफड़ा

ज़िन्दगी बटोरता
रात दिन

फेफड़ा कुछ नहीं
बाप-सा

दिल का बड़ा नाम है
माँ की तरह...।

मिट्टी

मिट्टी से आये

मिट्टी में चले
मिट्टी में मिले

ढूँढ ज़िन्दगी
पहेली है

अब चले हो

उन्होंने कहा
अब चले हो
कहाँ पहुँचोगे

आप भी

वहीं पहुँचोगे
मैंने कहा

रेचन

चरने के बाद
डकार लेते
घोड़े ने कहा
हरी घास पे
कविता लिखी
जाये...।

हाशिया

उसे हाशिये पे
मत फेंको
वो जिल्द पे
चढ़ जाएगा

दिल ने कहा

पथरीली है राह
कोई बात नहीं

दिल ने कहा
पहले जूते उतार दे

पीड़ा

मुस्कुराहट
किट्टी पार्टियों में
पीड़ा
चुल्हे चौके में रही

धार

जरा सोच को
धार दे दूँ

दिल से कांटा
निकालना है...

कोई

पलक का रोशनदान
उठाके कोई
बदन की हवेली से
झाँकता है... ।

चाँद

क्या रे चाँद
जब भी निकला रात कर दी... ।

जन्म 1971, पैतृक गाँव ठियोग, जिला शिमला, हि.प्र.

[राजकमल डेंटल क्लिनिक, 91, वार्ड नं. 2 प्रेम घाट, निकट पेट्रोल पंप, ठियोग, जिला शिमला, हि.प्र.-171201]

मो. 70180 01623

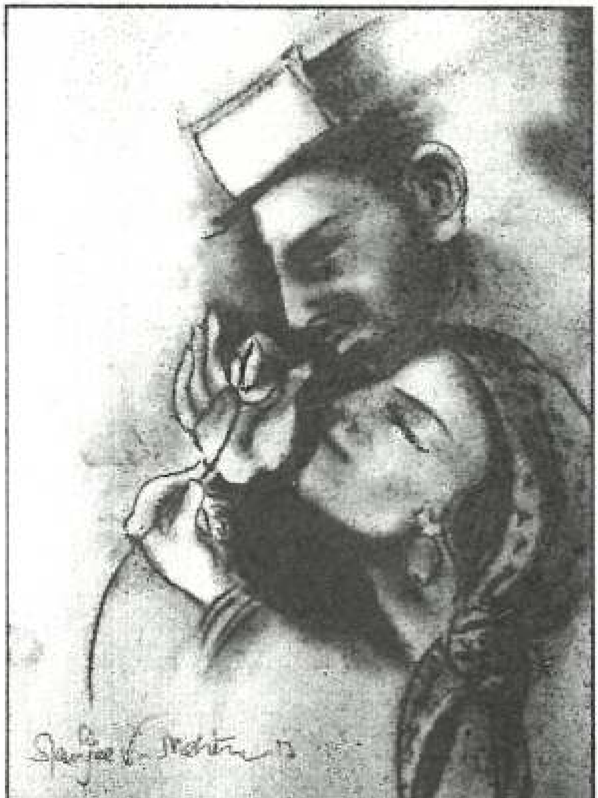

दो कविताएँ

❑ गणेश गनी

वह जब चुप रहता है

वह जब चुप रहता है
उसके चेहरे पर उस वक्त
चाँद आराम कर रहा होता है।

वह जब हँसता है
उसकी आँखों से
तितलियाँ उड़ रहीं होतीं हैं।

वह जब-जब रूठता है
ऋतु बदल जाती है तब-तब

जब लगता है कि
वह कुछ नहीं कर रहा
दरअसल तब वह इन्द्रधनुष पर
प्रत्यंचा चढ़ाने के बारे में सोच रहा होता है।

उसका खेतों में टहलना अजीब है
वह पेड़ों से बात करता है
पत्तों से हरियाली माँगकर जेबें भरता है
फूलों को मशवरा देता है।

उसके अपने खेल हैं
वह साँप-सीढ़ी नहीं खेलता
और न ही शिकार
जब लगता है कि

वह कागज़ के जहाज़ उड़ा रहा है
उस क्षण वह हवा में जाकर
घूमती पृथ्वी को निहार रहा होता है।
2017

मैं कहानी सुना रहा हूँ!

भोर से ठीक पहले
मैं तुमसे अचानक मिला
घर के बाहर बनी पत्थर की सीढ़ी पर
जैसे तुम मेरा ही कर रही थी इंतज़ार
दरअसल मेरे जाने के बाद के क्षण से ही
हो जाता था तुम्हारा इंतज़ार शुरू

कितने बरस बीत गए
तुम्हारे पैर छुए और फिर
गले लग अपने दुःख आँखों से बहा आया
आँख खुली तो देखा अभी भोर का तारा
पहरेदारी में जाग रहा है
जबकि तुम्हारा इंतज़ार अब भी बैठा है
ठीक उसी जगह दहलीज़ के बाहर
पत्थरों की पहली सीढ़ी पर।

मैं सच कहूँगा
पर कुछ लोग कहेंगे
मैं कहानी सुना रहा हूँ
ठीक यहीं से खेत बिछा रहता है
और खेत में बीचोंबीच
सर उठाए अखरोट का पेड़ करता है पहरेदारी
पहली सीढ़ी पर बैठे इंतज़ार की।

तुमने जीवन भर न सोने की चूड़ियाँ पहनीं
न तो कोई बटुवा रखा अपने पास
तुमने कभी करवा चौथ के बारे सुना भी नहीं
पर तुम्हारे अधिकतर दिन करवा चौथ जैसे ही बीते
हालाँकि तुम्हारा जाना कोई नई घटना नहीं है
पर कुछ जल्दी ही चले जाने के कारण भी तो हैं।

तुमने अपने जीवन के कुछ साल
इस अखरोट के पेड़ को दिए
कुछ साल पूर्णिमा के रोज़ चाँद ले जाता तुमसे
सामने नदी पार वाला मीठे पानी का झरना भी
तुम्हारे ही दिए बरसों को जी रहा है
बाकी तुम्हारे ही बचे हुए दिन पिता काट रहे हैं।
2017

जन्म 1972, पैतृक गाँव शौर, पांगी, जिला चम्बा, हि.प्र.
[भुट्टी कॉलोनी, डाक. शमशी, कुल्लू, हि.प्र.-175126]
मो. 97365 00069

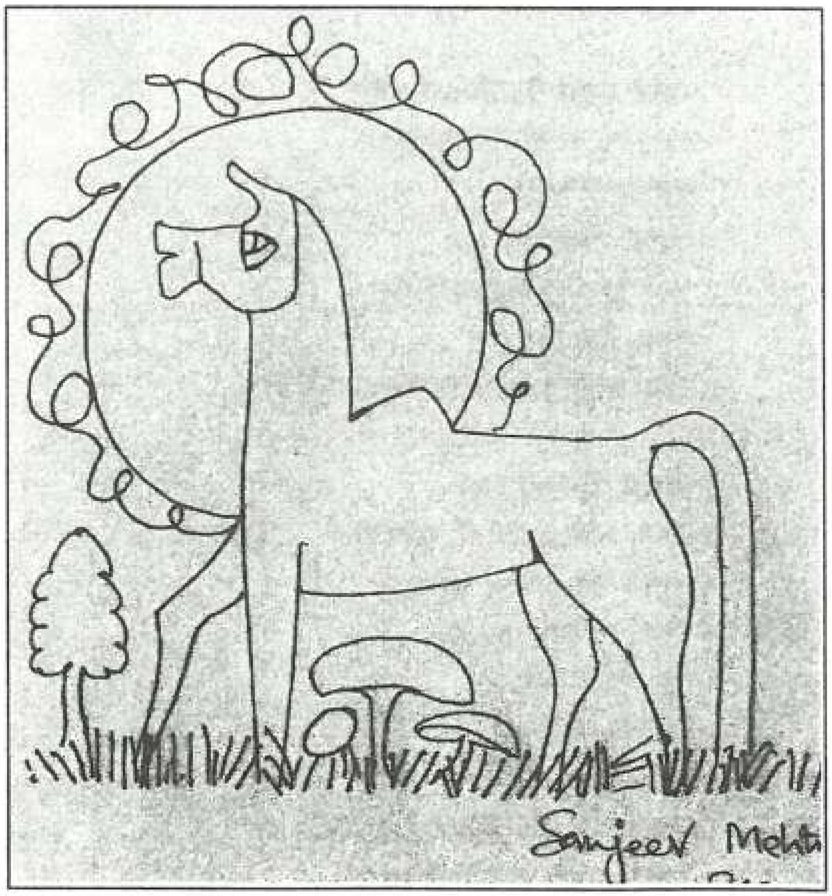

दो कविताएँ

❑ मनोज चौहान

मील का पत्थर

हाँ मैं हूँ
मील का पत्थर
दिख जाता हूँ तुम्हें
किसी राजमार्ग
या सुदूर इलाके की किसी सड़क पर
मत बिगाड़ो भाई
मुझ पर लिखी लिखावट।

सफर करती सवारियों के लिए
आज भी करता हूँ मार्गदर्शन
बताता हूँ उनको
अमुक जगह का नाम
भले ही आज चिढ़ाते हों मुझे
गूगल मैप
और जीपीएस की आधुनिक तकनीक।

नौकरी पर जाते हुए
सफर करते शख्स के फोन पर
सुनाई देता है जब स्वर
उसके परिजनों का
कि 'कहाँ पहुँचे'
तो झाँकता है वह
आँख मलते हुए
बस या ट्रेन की खिड़की से बाहर
उसकी आँखें खोजती हैं मुझे ही

ताकि बता सकें वह
उस स्थान के बारे में।
मैंने देखे हैं सड़क निर्माण के दौरान
मज़दूरों की दुःख-तकलीफें
मुंशी और इंजीनियर बाबू की डाँट
हर मौसम में काम करते
मेहनतकश लोग।
मुझ पर लिख रखे
किलोमीटर के आंकड़े को
नापा होगा किसी ने
कभी अपने कदमों से
हालाँकि उपहास मात्र के लिए
बदल देते हो तुम
किसी जगह के नाम को
कुछ मात्राओं के हेर-फेर से।

वर्षा, बर्फवारी
या जेठ की तपती दोपहरी में
मैं खड़ा हूँ अडिग
अपनी जगह पर
मुझे खोजती हैं
पथिक की आस भरी आँखें
और उनमें लौट आती है चमक
इस अनुभूति के साथ
कि मंज़िल अब
इतनी भी दूर नहीं!
2020

अम्मा का संदूक

दूध, दही और मक्खन
संजोने के लिए रखा
अम्मा का यह आयताकार
काले रंग का संदूक
जिसके ढक्कन के भीतर की तरफ
एक खास मौसम में
आ बैठतीं थीं मधुमक्खियाँ।

घर के बच्चों को दी जाती थी
खास हिदायतें
कि उस कमरे में जाना वर्जित है
कहीं डंक न मार ले कोई मधुमक्खी
अम्मा वैसे ही रखती रहती
दूध, दही और मक्खन
मजाल कि कभी काटा हो उन्हें
किसी भी मधुमक्खी ने।

दरवाज़े और खिड़की पर
भिनभिनाती मधुमक्खियाँ
ऐसे लगतीं थी
मानों कर रही हों पहरेदारी
अम्मा के संदूक की

दो कमरे का पुरखों का
पुराना घर टूटा
और बन गया नया घर
कई बार अदला-बदली में
बदली गई जगह
संदूक की भी
लेकिन मधुमक्खियाँ आती रही
और ढूँढ लिया
हर बार
अम्मा का संदूक।

जब चली जाती मधुमक्खियाँ
तो उस जगह पर बच जाता
उनके छत्ते का निशान
मोम के अवशेष की
उस आकृति को
हम बच्चे देखते थे
स्पर्श करके
और खुरच-खुरच कर चबाते
बचे हुए मोम को।

अम्मा नहीं रही

लेकिन उनका संदूक
रहा वर्षों तक इंतज़ार में
लेकिन मधुमक्खियाँ
फिर नहीं आईं
शायद अम्मा का स्नेह ही
खींच लाता था उन्हें
यह बात
हम आज समझे हैं।
2021

जन्म 1979, पैतृक गाँव महादेव, सुन्दरनगर, जिला मण्डी, हि.प्र.
**[सेट नं.-20, ब्लॉक नं.-4, टाईपबी, एसजेवीएन कॉलोनी दत्तनगर,
तह. रामपुर बुशहर, जिला शिमला-172001]**
मो. 94180 36526

दो कविताएँ

❑ सुरिन्द्र सिंह 'यूसुफ'

विरासत

आखिर चुनाव का मौसम आ गया
तमाम समीकरणों के बाद
कहीं पुत्र को
कहीं पोते को
कहीं बेटी को तो
कहीं पुत्र वधू को
सियासत की विरासत मिली
कहीं रोड शो
कहीं जश्न तो
कहीं शक्ति प्रदर्शन
प्रजातंत्र का मेला
अनोखा और निराला
ठीक उसी समय
मेरे गाँव का लुहार रिग्ज़िन तोंडुप
एलान-ए-आम करता है
कि नहीं अब नज़रें काम करतीं
औज़ारों पर वो धार नहीं उतरती
नहीं अब हथौड़े की चोट निशाने पर पड़ती
आज तक की तमाम खताओं की माफी माँगते
अपने ज्येष्ठ पुत्र
को सौंप दी अपनी विरासत
वो दो हथौड़ियाँ
धौंकनी वो कोयले की बोरियाँ
चिमटा छेनी
चार लोहे की छड़ियाँ

किसी अखबार की सुर्खी तो नहीं बनी ये खबर
कि हमने वैदिक संस्कृति को जीवित रखा
सनातन प्रणाली को कायम रखा
कि नेता का बेटा नेता बना
और
लुहार का बेटा लुहार
2019

पहाड़

पहाड़ यूँ तो
सख़्त मिज़ाज
ईमानदार और खुद्दार हुआ करते हैं
मगर आजकल ये
खोखले और छिछोरे हो गए हैं
पानी हवा
कभी अफवाहों के साथ
हो लेते हैं
अपनी बुनियाद छोड़कर
कम्प्रोमाइज़िंग हो गए हैं
छोड़ दी है पहाड़ीपन
झुक जाता है वो
जब आसमान पर उड़ता है
कोई हवाई जहाज़
सीखना होगा
खड़े रहना
खुद से ही
खड़ेगा
तभी तो रहेगी हरियाली
तभी आएँगे
परिंदे गद्दी भालू
और टूरिस्ट भी
तेरे पहाड़ पर
2021

जन्म 1967, पैतृक गाँव मूलिंग, जिला लाहौल स्पीति, हि.प्र.
[वार्ड नं. 11, शास्त्री नगर, कुल्लू, हि.प्र.-175101]
मो. 94590 84742

जात

❑ राजू मस्ताना

एक से दस तक की गिनती में
दो के पहाड़े में
पाइथागोरस प्रमेय में भी नहीं
ना पाई में
ज्यामिति में तो बिल्कुल भी नहीं
हाँ मुझे जात गणित में नहीं मिली

विज्ञान में
उसमें खुलते हज़ारों हज़ार दरवाज़ों में भी नहीं
उन कारणों में भी नहीं जो खोजे जा चुके हैं
ना उन कारणों में
जो जिज्ञासाओं में मचल रहे
फिजिक्स में भी नहीं
केमिस्ट्री में भी नहीं
और बायोलॉजी ने तो सीधा चांटा मार दिया
हाँ मुझे जात विज्ञान में बिल्कुल नहीं मिला

ऊँचे नीचे पहाड़ों में
नदियों में झरनों में
सागरों द्वीपों महासागरों महाद्वीपों में भी नहीं
मिट्टी पत्थर पानी से भी जात नदारद थी
भूगोल भी मेरा मज़ाक बना
एंठता रहा जैसे चिढ़ा रहा हो
हाँ मुझे जात भूगोल में भी नहीं मिला
फिर उठाई मैंने कुदाल/फावड़ा/गैंती/झब्बल
खोद डाला सारा इतिहास
चंद मैली तारीखों के अवशेष से पड़े थे
कुछ सुराग़ से हाथ लगे
पर वहाँ भी
इतिहास पल्ला झाड़ते झुंझलाकर बोला
तुम अपने सब से पवित्र कहे जाने वाले ग्रन्थ में खोजो
वहीं पर दर्ज है यह महान परम्परा

जन्म 1981, पैतृक गाँव यूरनाथ, जिला लाहौल स्पिति, हि.प्र.
[गाँव शुरड़, डाक. खोखण, तह. भूंतर, जिला कुल्लू, हि.प्र.-175125]

परिचर्चा

हिमाचल प्रदेश हिन्दी कविता के क्षेत्र में पिछड़ गया हुआ-सा क्यों दिखता है?

[विपाशा के कविता विशेषांक हेतु इस अनौपचारिक चर्चा के लिए शुरू में छह कवियों का एक व्हाट्सएप ग्रुप बनाया गया। जिसमें से विभिन्न कारणों से दो कवि भाग नहीं ले सके। 21 अप्रैल, 2022 को शुरू हुई तथा लगभग दो माह से भी ऊपर चली इस चैट का वॉल्यूम 15 हज़ार शब्दों में फैल गया। पाठकों की सुविधा के लिए उस बृहद् वार्ता के संपादित अंश यहाँ दिए जा रहे हैं—सम्पादक]

अजेय : आदरणीय ग्रुप, शुरुआत के लिए मेरे पास एक बचकाना-सा सवाल है—क्या हिमाचल को साहित्य सृजन (हिंदी साहित्य) की दृष्टि से एक पिछड़ा हुआ राज्य कहा जा सकता है? यदि यह सच है तो वजहें क्या रहीं? चूँकि यह कविता अंक है, तो हम कविता पर ही केन्द्रित रहने की कोशिश करेंगे।

मोहन साहिल : कुछ मायनों में पिछड़ा माना जा सकता है। क्योंकि हिमाचल की कविता और अन्य विधाओं को बिना किसी आंदोलन, संघर्ष और विमर्श से उपजा माना जाता है। ऐसा मेरे एक मित्र प्रमोद रंजन ने एक बार कहा था। लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता। कविता और अन्य साहित्य केवल आंदोलन नहीं है। जीवन के बहुत से आयाम हैं। कोई स्वर्ग में बैठा व्यक्ति क्या कवि नहीं हो सकता? समस्या, शोषण, वाद-विवाद ही यदि कविता है तो फिर सुविधाओं में जी रहे कवि तो बेकार होने चाहिए। केवल संघर्ष ही कवि, लेखक बनाता है यह भी सही नहीं है। अध्ययन, समाज और प्रकृति के प्रति संवेदना भी कवि, लेखक बनाती है। हाँ, हिमाचल के लेखन में जो आमजन के सरोकार होने चाहिए उनका अभाव रहा है। फिर हिमाचल एक पहाड़ी प्रदेश है और यहाँ के अपने कुछ अलग सरोकार हैं जिन्हें मैदानी इलाकों के लिए समझना आसान नहीं है।

अजेय : अंतिम बात महत्त्वपूर्ण है। इसका एक सिरा आँचलिकता से जुड़ता है। दूसरा सिरा स्थानीय पलिटिकल आकाँक्षाओं से भी जुड़ता है। मेरी पीढ़ी ने हिमाचल प्रदेश को लगभग 'बना हुआ' ही देखा। लेकिन पिछली पीढ़ी ने उसे बनाने के लिए संघर्ष किया। बाकायदा आंदोलन भी किया। बहुत गहरे हमारे सामूहिक अवचेतन में यह हिमाचली अस्मिता का सवाल था। पंजाबियत द्वारा नवाज़े गए 'मुंडू' संबोधन की 'स्टिग्मा' से मुक्ति की छटपटाहट से पैदा हुआ सवाल था यह! और शायद यह प्रशासनिक पहचान हमें प्लेट में सजे लड्डू की तरह न मिला। इस हिमाचलियत को पाने के लिए हमारे पुरखे खासे घर्षण में से गुज़रे होंगे। बड़ी मशक्कत लगी होगी। तो ऐसा कहना अर्द्धसत्य ही है कि हमारे साहित्य की जड़ों में कोई आंदोलन न था। लेकिन इसमें दो बातें सोचने जैसी हैं—एक तो यह कि हिमाचल का कोई एक सांस्कृतिक मोनोलिथ निर्मित हुआ क्या? क्या यह संभव था? भविष्य में भी संभव है

क्या? दूसरे, एक पहाड़ हमारे पड़ोस में भी है—उत्तराखंड। ज़ाहिर है उनके यहाँ हमसे अच्छा साहित्य निकलकर के आया है। परिमाण में भी, गुणवत्ता में भी। जबकि उनको प्रशासनिक स्वायत्तता हमसे बहुत बाद में मिली।

मोहन साहिल : उत्तराखंड में शुरू से चिंतन की अपनी परंपरा रही है। हिंदी के अलावा उनका लोक साहित्य भी काफी समृद्ध है। फिर हिमाचल के मुकाबले कम संसाधन भी कारण हैं।

अजेय : सही है, लेकिन लोक भाषाएँ हमारी भी तो थीं, क्या वे इतनी अशक्त थीं कि एक समृद्ध वाचिक साहित्य पैदा कर पातीं, जिसके ज़ेरे असर उत्कृष्ठ लिखित साहित्य पनप पाता? यह भी एक कारण समझा जाए कि उनके मध्य वर्ग और निम्न मध्य वर्ग को माईग्रेशन के कारण बाहरी दुनिया का एक्सपोज़र मिला और वहाँ अच्छी रचनात्मकता आई?

मोहन साहिल : सृजित क्या हो रहा है वह भी देखना होगा, और उस सृजन के लिए खाद-पानी कहाँ से मिल रहा है।

अजेय : और संसाधन वाली बात का खुलासा करेंगे?

मोहन साहिल : जैसे सेब, सीमेंट कारखाने, जलविद्युत योजनाएँ, सरकारी नौकरियाँ, आबादी कम होना।

अजेय : अच्छा, मतलब संसाधन कम होने से सृजनात्मकता पर सकारात्मक असर पड़ा। यह वाक़ई रोचक है। हाँ ऐसा सुना है कि वहाँ माईग्रेशन बड़े पैमाने पर है, विस्थापन कहना चाहिए।

मोहन साहिल : माइग्रेशन वहीं से होता है जहाँ जीवन-यापन के साधन कम हों। जैसे हिमाचल के निचले भागों से लोग पंजाब मुंबई आदि गए।

अजेय : तो हमारे वही लोग क्यों बहुत रचनात्मक नहीं हो पाए? अपवादों को छोड़ दें, समूचे लिटरेरी आउटकम की तुलना करें तो हम उन्नीस ही ठहरते हैं, इसलिए हमारा साहित्य हाशिये में है, ऐसा एक अनुमान बनता है।

मोहन साहिल : इसका कारण है कि उत्तराखंड से जिन लोगों ने पलायन किया। उन्होंने अपनी योग्यता से दिल्ली और अन्य स्थानों पर उच्च्व पद पाए और वे साहित्य की मुख्य धारा से जुड़ पाए। जैसे मंगलेश डबराल, लीलाधर जगूड़ी आदि। उनके जीवन के संघर्ष ने ही उनके लेखन और सोच में निखार लाया।

अजेय : बात सही हो सकती है, लेकिन अनएथिकल भी है कि उच्च्व पदों के साथ भी साहित्यिक ख्याति का एक सिरा जुड़ा रहता है। प्रतिबद्ध कवियों, ख़ास कर नए लोगों को हताशा में झोंक देगी यह बात।

मोहन साहिल : हम लोग अपनी ही मुग्धता में खोए रहे। हमें पहाड़, नदी, चिला रा डालू, धौलाधार, सब छैल ही नज़र आए। कोई अभाव, कोई मुश्किल कवियों को नहीं झिंझोड़ पाई। कुछ पुरानी प्रेम कहानियाँ बाँचते रहे। डेम बने, लोग विस्थापित हुए, लेकिन हम तो अपना दुःख और मुसीबतें भी ढंग से व्यक्त नहीं कर पाए। हम उधार के उद्धरणों और टिप्पणियों तथा कोटेशनों पर साहित्य की रोटी पकाते रहे। दिल्ली के साहित्यिक गलियारों का कोई लेखक अपनी टुच्ची कविताओं को भी महान साहित्य सिद्ध करवा लेता है। और हमारे आदर्श वही बनते हैं।

निरंजन देव शर्मा : हिमाचल प्रदेश में कोई आंदोलन नहीं रहा या जीवन संघर्ष नहीं रहा ऐसा कहना तो ठीक नहीं होगा, लेकिन आत्ममुग्धता वाली बात से मैं भी सहमत हूँ। इस आत्ममुग्धता को बनाए रखने में मुख्यधारा के अतिथि कवियों की भी भूमिका रही जो अधिकतर पर्यटक की तरह आए और प्राकृतिक सौंदर्य से अभिभूत होकर रोमानी कविताएँ लिख गए। इस परिपाटी के चलते पहाड़ और उसकी समस्याओं को लेकर भ्रामक धारणा बनी रही हमारे विभाग की पत्रिकाओं की भी भूमिका इसमें रही। हम अपने लेखकीय सरोकार ही ठीक से तय नहीं कर पाए।

अजेय : अतिथि और सैलानी कवियों के संदर्भ में आप और साहिल भाई ठीक हो सकते हो। लेकिन जहाँ तक रूमानी भावबोध की बात जो कही आप दोनों ने, मैं देखता हूँ कि पड़ोसी पंजाबी साहित्य की प्रगतिशीलता टोटली रोमेंटिक होते हुए भी प्राणवान बनी रही। मोहन सिंह, अमृता प्रीतम, शिव बटालवी, सुरजीत पातर तो एक तरफ, कट्टर नक्सली कवि 'पाश' भी बड़े गहरे अर्थ में रोमांटिक था। यह उनकी कविता में ही झलक आता है।

मोहन साहिल : पंजाब की भूमि तो सदियों से उर्वर रही है। सूफी संतों के वचनों, गुरुओं की शिक्षाओं, स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े सेनानियों के जीवन और प्रेम की पराकाष्ठा वाली प्रेम कहानियों से पंजाब की विरासत भरी हुई है। फिर पंजाब ने बाहरी आक्रांताओं को सबसे पहले सहा। यहाँ कई प्रकार की संस्कृतियों के घालमेल से ऐसी साहित्यिक पैदावार हुई। पंजाब के लोग हमेशा मुखर रहे।

अजेय : सही

मोहन साहिल : विभाजन के बाद तो पंजाब में जीवन का दृष्टिकोण ही बदल गया।

अजेय : तनिक खोलेंगे इसे।

मोहन साहिल : उन लोगों ने नंगी तलवारों से हिंदू, मुसलमानों को कटते देखा। अपने ही अपनों को मार गए। इतनी उथल-पुथल के बाद वहाँ जो धारा बनी वह सबसे अलग है। बहुत महीन सोच जो इंसानियत से भरपूर है। पंजाब का अपना दर्द है जो वहाँ की कविता में झलकता है। जब ज़मीन उर्वर हो तो फसल भी भरपूर।

अजेय : वही न, वहाँ असल में इस राजनीतिक उथल-पुथल और सामाजिक 'केऑस' ने ही एक उदात्त और उच्च कोटि की साहित्यिक अभिव्यक्ति पैदा की। मानेंगे आप?

मोहन साहिल : जी बिलकुल। लेकिन हमारे पास ऐसा कुछ नहीं।

अजेय : अब ज़रा परम्परा की बात करें—मध्यकाल तक पीछे चले जाएँ। हमारे आस-पास के देशों में क्या रचा जा रहा था? पंजाब में फरीद और नानक हुए, कश्मीर में ललद्यद हुई, तिब्बत में मिला रेपा हुए। मेरी पढ़त की सीमा हो सकती है, हिमाचल में भक्ति काल के प्रभाव में (10 वीं सदी से 16 वीं सदी के दौर में) कोई साहित्य रचित होता नहीं दिखता। उस युग में अपने इधर की काव्य भाषा भी ब्रज ही रही होगी संभवतः, या कि पंजाबी थी? स्थानीय भाषाओं में कुछ काम है क्या? लाहुल की बात मैं कर सकता हूँ। यहाँ मिली-जुली पहाड़ी (डोगरी, भरमौरी, पाडरी, पंगवाली, चिनल आदि लोकभाषाओं) में लोक गाथाएँ हैं, सब ओरल। या फिर प्राचीन तिब्बती और संभवतः बाल्ती भाषाओं में कुछ प्री बुद्धिस्ट आनुष्ठानिक गाथाएँ हैं! लिखी वो भी नहीं गयीं। सभी ओरल हैं। हिमाचल की सिद्ध व नाथ पंथी गाथाओं, गूगा और भरथरी गाथाओं को हिंदी कविता की परंपरा से जोड़ा जा सकता

है क्या?

अनूप सेठी : हमारी बोलियों में भी लोक गीत, लोक कथाएँ, गाथाएँ, लोक नाट्य भरपूर हैं और समृद्ध हैं। मैंने तो देखे हैं, सुने हैं। अब ओझल हो रहे लगते हैं।

मोहन साहिल : मैं जहाँ तक समझा हूँ पुराने हिमाचल में अपनी अलग देव संस्कृति थी। नया हिमाचल पंजाब के प्रभाव में था। ऐसे में यहाँ भक्तिकाल के कवियों की रचनाएँ तो पहुँची लेकिन भक्ति की अलग धारा यहाँ रही। राम या कृष्ण से अधिक यहाँ ग्राम देवी-देवताओं का अधिक प्रभाव है।

अजेय : आपका आशय 'शमन' परम्पराओं से है, कुल्लू और लाहुल में उनकी भी तो गाथा भार्थाएँ हैं पुरातन भाषाओं में। ऋचाओं की सी लय और ऊर्जा है उनमें। किन्नौर और महासू का मुझे ठीक से पता नहीं।

मोहन साहिल : हाँ, और हालाँकि राम, हनुमान, भतृर्हरि, भगवान शिव को लेकर कई लोक गाथाएँ हैं। लेकिन ये साहित्यिक आंदोलन जैसा नहीं।

अजेय : उर्दू में भी अपने यहाँ कुछ रचा गया होगा, ज़रूर, क्योंकि उस भाषा का भी एक दौर रहा। पाँचवें दशक तक उर्दू ही शिक्षा का माध्यम रही।

मोहन साहिल : हमारी पीढ़ी से पूर्व यहाँ उर्दू के कई बड़े रचनाकार थे, सागर पालमपुरी, काहन सिंह जमाल, सुरेश चंद्र शौक आदि बहुत से नाम भूल रहा हूँ। जो दूर-दूर तक रचनाएँ लेकर पहुँचते थे।

अजेय : जी बिलकुल। कृष्ण कुमार 'तूर' भी एक नाम है और ज़ाहिद अबरोल, द्विजेन्द्र द्विज और नवनीत तो एकदम समकालीन हैं।

अनूप सेठी : शबाब ललित।

निरंजन देव : विभाजन और ग़दर वाली बात—यह पंजाब में बड़े पैमाने पर हुआ पर हिमाचल अछूता रहा ऐसा न था। व्यास का पानी लाल रहा कई दिनों तक। कुल्लू से लेकर मंडी तक और कांगड़ा में भी मार-काट हुई। विभाजन से पहले भी बलबे का इतिहास है। मंडी/सुकेत में अंग्रेज़ों के पिट्ठू राजाओं की ज़्यादतियों के चलते बड़े आंदोलन हुए। करसोग से होते हुए सुकेत तक। प्रजामंडल आंदोलन का महत्त्व भी कम न था।

अजेय : सही। गद्य में तो कुछ-कुछ हैं दस्तावेज। शोध करने पर और भी निकल आएगा।

निरंजन देव : हमने बुज़ुर्गों से भी किस्से सुने हैं और एक किताब विजय विशाल ने सुझाई थी सुकेत के विद्रोह पर। खासी रोचक। जागरूक प्रजा के बलबे (विद्रोह) ठीक से दर्ज नहीं हुए या भुला दिए गए। गगनदीप सिंह ने एक महत्त्वपूर्ण किताब संपादित की है—'सुकेत रियासत के विद्रोह' शीर्षक से। यह जानना भी रोचक है कि किताब के संपादक मूलतः हरियाणा से हैं। बहुत मेहनत से प्रामाणिक सूचनाओं को जुटाया गया है। हैरानी होती है कि क्रूर राजाओं और अंग्रेज़ों के खिलाफ व्यापक और संगठित विद्रोह हुए। 1862 और 1877 के 'दूम्ह' से लेकर गदर कि गूँज तक पर प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध है जो कांगड़ा के मुज़ारा आंदोलन और स्वतन्त्रता सेनानियों की भूमिका तक विस्तार से न केवल सुकेत के शोषण पर आधारित आर्थिक-राजनैतिक व्यवस्था का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है, बल्कि शोषण के खिलाफ होने वाले संगठित आंदोलनों का भी सजीव चित्रण करती है। ज़ाहिर है

प्रदेश के अन्य इलाकों का भी इस तरह का इतिहास रहा होगा, क्योंकि व्यवस्था का स्वरूप तो शोषण का और आंदोलनों के दमन का ही रहता आया है।

अजेय : बहुत सही, ओरल (किस्सागोई) में लाहुल में भी है। लेकिन कविता में कहाँ है? विभाजन के दर्द को तो कत्तई पी ही गया न, हज़म ही कर गया कवि—वो चाहे पंजाबी का हो या हिन्दी या किसी और भाषा का। फकत एक कविता याद आती ढंग से—अमृता प्रीतम की 'अज अक्खाँ वारिस शाह नूँ...' अलबत्ता यह है कि फिक्शन में, गद्य में, फिल्मों में बहुत शिद्दत से बाहर आया यह दर्द। हम कविता पर रहें तो बेहतर।

निरंजन देव : प्रगतिशील कविता के उत्कर्ष के दौर में भी हमारे यहाँ कोई सशक्त धारा नहीं रही, बल्कि कटाव-सा नज़र आता है। और यह एक बड़ा कारण भी रहा उत्तर भारत की मुख्य धारा की कविता से अलग-थलग पड़ने का।

अजेय : यह सही कहा आपने, ज़रा खुलासा करेंगे, पाठकों के लिए।

निरंजन देव : प्रगतिशील अतिथि कवि हिमाचल आते रहे लेकिन उनकी विचारधारा सम्पन्न कविता यहाँ के लेखक को उन अर्थों में आंदोलित नहीं कर पाई। स्थानीय समस्याओं जैसे कि पर्यावरण का क्षरण, किसानों की समस्याओं और शोषण पर जो कविता सामने आई उसमें भी बड़ी समस्या शिल्प को लेकर रही। हमारे यहाँ का कवि अधिकतर उधार के शिल्प को दोहराता रहा या फिर एक-दूसरे के शिल्प को इसलिए भी कोई कवि अलग बड़ी पहचान लेकर सामने न आ सका। अपवाद स्वरूप कविताएँ आती रहीं पर पत्रिकाओं की भीड़ में खो जाती रहीं।

अजेय : ध्यातव्य है।

अनूप सेठी : मुख्यधारा की नज़र से देखेंगे तो हाशिए पर होने की दिक्कतें दिखने लगती हैं। यह लगता है हिंदी में जो छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि के दौर आए उनकी अनुगूँज यहाँ पीछे-पीछे आई। जैसे 'पारली धार' (सामने की धार) की हाँक कुछ देर बाद और मद्धम होकर 'उआर' (इस ओर) आती है। उसने न तो सूबे में बहुत ठोस उपस्थिति दर्ज कराई, न ही वृहत्तर हिंदी साहित्य समाज में। इसके पीछे कारण कई हैं। कुछ कारणों की चर्चा अजेय और मोहन साहिल कर चुके हैं। उनमें और भी मुद्दे जोड़े जा सकेंगे, ऐसा मुझे लगता है। मुझे इसके अलावा दो बातें लगती हैं। हो सकता है मैं गलत हूँ, बल्कि मैं चाहूँगा कि मैं गलत सिद्ध किया जाऊँ, अगर यह महज भाववादी ऑब्जर्वेशन हो। पहली बात यह है कि हमारे समाज यानी जन-मानस में कोई भी साहित्येतर गंभीर चर्चा दर्शन का पल्लू पकड़ कर यथास्थितिवाद से होती हुई भाग्यवाद के चोगे में घुस जाती है। फिर तथाकथित अध्यात्म, परंपरा, लोक, टोने-टोटके की कंदराओं में भटकती रहती है। इस जड़ता को तोड़ने की हिम्मत हम नहीं करते। देवभूमि का एहसास हमें दबाए रखता है। दूसरे, हमारे सामूहिक चित्त में एक तरह की थोथी सेल्फ राइटियसनेस का एहसास प्रबल है—कि हमारी मूल्यदृष्टि, जीवनदृष्टि, जीवनशैली, यानी कि हम स्वयं में संपूर्ण और श्रेष्ठ हैं। थोथी इसलिए कि इस श्रेष्ठ भाव के बावजूद अपनी बोलियों, वास्तुशिल्प, मूर्तिशिल्प, लोक को जानने-सहेजने के प्रति हम उदासीन रहते आए। परिवर्तन, असंतोष, नवीनता, आदि की तड़प और आकांक्षा इस भोली नेकनीयत तले दबी रह जाती है। भौगोलिक कारणों से अलग-थलग पड़े रहे; मैदानी इलाकों में और वहाँ से पलायन भी इतना नहीं हुआ; इस वजह से अपने में मगन रहे आए। मुझे नहीं

पता ये बातें पूरे हिमालय क्षेत्र के लिए सही हैं या नहीं।

एक और बात—विचार और जीवन में हमेशा फाँक रहती है, इसलिए हमने जीवन में यानी पैसा कमाने, घर-बार बनाने, उपभोक्ता बनने या सभ्य नागरिक बनने के चक्कर में अपने उसूल और मूल्यवत्ता को 'पचौह्ले' रखकर कढ़ने दिया। आगे 'चूल्हे' पर अवसरवाद से चुपचाप समझौता करते हुए रोटियाँ सेकीं और अपने सामाजिक और आत्मिक वजूद को छलनी होने दिया, दो-फाँक किया। नतीजतन संस्कृति संपन्न नागरिक न बन सके। हमारा कवि-साहित्यकार इसी उलझे हुए ताने-बाने में से निकला।

इस 'किंतु-परंतु' के बावजूद मुझसे वरिष्ठ कवि प्रदेश में मौजूद थे, जो समकालीन थे। यह अलग बात है कि उनकी बात दूर तक और देर तक नहीं पहुँची, प्रतीत नहीं होती। उसकी वजह उनका रचना कर्म नहीं अन्य साहित्य इतर कारण रहे हैं। अगर मौका लगा तो उस पर भी बात की जानी चाहिए। पर वह भी ऑब्ज़र्वेशन आधारित ही होगी, तथ्यात्मक नहीं, इसलिए भाववादी होने का खतरा बना ही रहता है।

अजेय : सर, यूँ तो आपने बात अच्छे से खोल दी है। फिर भी दो-तीन विचार बिंदु मेरे मन में बन रहे हैं। आपने पिछले दिनों एक बातचीत में कहा था कि पुराने ज़माने में उत्तराखंड का विद्यार्थी इलाहाबाद और लखनऊ जैसे हिंदी साहित्य के 'गढ़ों' में शिक्षा प्राप्त करता था। जबकि हमारे बच्चों को लाहौर जाना पड़ता था, जोकि उर्दू और पंजाबी अदब का गढ़ था। प्रोफ़ेसर वरयाम सिंह ने भी अन्यत्र यह बात कही है। विभाजन के बाद लाहौर भी न रहा हमारे पास। पंजाब युनिवर्सिटी भी बंट गई। एक हिस्सा शायद सोलन शिफ्ट हुआ, दूसरा जालन्धर। कुछ विभाग अम्बाला, होशियारपुर, लुधियाना चले गए और अंततः चंडीगढ़ में पुनर्स्थापना हुई। ये जगहें उस तरह से साहित्य केंद्र नहीं बन पाईं। न हिंदी और न ही उर्दू और न ही ठीक तरह से पंजाबी के, तो क्या हिमाचली लेखन को देशभर में जो भाषिक वर्चस्व की उठापटक थी, उसकी मार भी पड़ी?

यहाँ आपकी सूचना के लिए बता दूँ कि लाहुल स्पीति के फकत तीन शुरुआती ग्रेजुएटस (पाँचवें दशक के लाहौर रिटर्नड) में से एक नाम राम लोक, उर्दू के अच्छे लेखक थे, और पढ़ाई अधूरी छोड़कर कलकत्ता स्टेशन पर रिसाले बेचने का काम करते रहे। उन्होंने उर्दू में दो किताबें छपवाई थीं—'नूर-ए-कोहिस्तान' और 'मद्दो जज़र'। अभी दोनों किताबें अनुपलब्ध हैं। ऐसे अनेक लेखक हिमाचल के उस दौर ने पैदा किए होंगे लेकिन समाज में शायद उस तरह से कद्र नहीं रही होगी, जितनी उत्तराखण्ड में थी, है आज भी। यह भी एक नुक्ता दिखता है मुझे। भाषा को लेकर यदि साफ-साफ कहें तो उत्तराखंड की बोलचाल की भाषा और लोक साहित्य की भाषा भी, हिंदी के अधिक निकट है शायद, बनिस्बत हमारे! हमारी मातृभाषाएँ पंजाबी, तिब्बती और आदिम आग्नेय परिवारों के अधिक निकट ठहरती हैं। जिसका ऊपर भी हिंट दिया था मैंने। यह भी एक कारण हो सकता है क्या? क्या मातृभाषा का कोई रोल होता भी है किसी स्थान विशेष के साहित्यिक विकास में? विशेषकर कविता के?

मोहन साहिल : मातृ भाषा का रोल तो होगा ही। अपर शिमला में पुराने समय में दुर्घटनाओं में जान गवाने वाले स्त्री या पुरुषों को लेकर बड़े मार्मिक लोक गीत बने हैं, लोक भाषाओं में। नई पीढ़ी हालाँकि उनसे दूर है। यदि ये हिंदी में लिखे जाते तो शायद इतने

लोकप्रिय न होते। बिलासपुर का 'मोहना' भी ऐसा ही लोकगीत है। कांगड़ा, चंबा, बिलासपुर, कुल्लु में भी जीवन के कई आयामों पर लोकगीत हैं, लेकिन कोई आंदोलन या अभियान नहीं है। हमारे प्राकृतिक साधनों के दोहन से जो विकृतियाँ आईं वह भी लोक गीतों में नहीं आईं उस तरह से। हमारी पहाड़ी संस्कृति में जातिवाद, शोषण जैसी कई खामियाँ हैं। लेकिन उनके विरुद्ध खुलकर अधिक नहीं लिखा गया।

अजेय : सही है लेकिन मैं फिलहाल यह कहना चाह रहा हूँ कि हिंदी भाषा हिमाचल की माँ-बोलियों से काफी दूर की भाषा है। उत्तराखंड की माँ-बोलियों के अधिक निकट जान पड़ती है।

अनूप सेठी : भाषा विज्ञान के जानकार को पूछना पड़ेगा।

अजेय : ज़रूर पूछिए, मुझे तो यह स्पष्ट दिखता है कि हमारी भाषाओं में हिंदीपन बहुत कम है। हाँ यह बहस का विषय है कि हिमाचल के साहित्यिक पिछड़ेपन के कारणों में से यह भी एक है या नहीं।

मोहन साहिल : गढ़वाल और कुमाऊं की बोली में भी फर्क है।

अजेय : काफी फर्क है लेकिन दोनों में प्रचुर हिंदीपन है। जेनेरल ट्रेंड यह है कि पश्चिम की ओर बढ़ते जाएँ तो हिंदीपन कमतर होता चलता है। चाहे मैदान की बात करें, तराई की, या फिर पहाड़ की। और पहाड़ के भीतर जाएँ उत्तर की ओर, तो वहाँ आदिम भारतीय भाषाओं या तिब्बती-बर्मी का प्रभाव अधिक है। हिमाचल में हिंदी महज़ दफ्तर की भाषा है अभी भी। यह अवश्य है कि सोलन और शिमला के निचले क्षेत्रों में लोगों को विधिवत हिंदी बोलते देखा मैंने, और केवल इसी क्षेत्र में। बहरहाल, बेहतर हो हम भाषिक टेक्निकेलिटी में न फंसें।

मोहन साहिल : हिमाचल पर पंजाबी, राजस्थानी, हरियाणवी का असर है। कई शब्द बंगाली के भी हैं।

अजेय : जी वही इंगित कर रहा हूँ हिमाचल की भाषाओं पर पंजाबियत अधिक हावी है।

मोहन साहिल : पंजाबी तो बकायदा 1971 तक हमारे स्कूलों के सिलेबस में थी।

अजेय : निरंजन ने प्रगतिशील आन्दोलन से कटाव की बात कही थी। आगे इस बात का खुलासा न हुआ। मेरा यह कहना है कि यह कटाव इस सबके बावजूद भी रहा कि एस.आर. हरनोट और सुरेश सेन निशांत जैसे साहित्य कर्मियों ने बड़े श्रम से जन-जन तक लघु पत्रिकाएँ पहुँचाईं और लघु पत्रिकाएँ निन्यानवे प्रतिशत प्रगतिशील आंदोलन की उपज हैं।

निरंजन देव शर्मा : यह सही है कि बाद के दौर में पत्रिकाएँ लेखकों-पाठकों तक पहुँचीं। निशांत और हरनोट के काफी बाद में गणेश गनी ने इस तरह के प्रयास किए। संवाद के माध्यम से कुल्लू के बुक कैफे में भी पत्रिकाएँ उपलब्ध कराने की कोशिश हुई। इससे पढ़ने-लिखने के मामले में यहाँ का लेखक अधिक गंभीर हुआ। इनमें से कुछ पत्रिकाओं में अनुवाद के माध्यम से विश्व के महत्त्वपूर्ण कवियों तक भी यहाँ के लेखक की पहुँच और समझ बनी। हँस, बया, आकंठ जैसी पत्रिकाओं से आगे के गंभीर विमर्शों से यहाँ के लेखक को जोड़ने में जिन पत्रिकाओं ने भूमिका निभाई उनमें 'पहल', 'सदानीरा', 'अकार' और 'तद्भव'

का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। हमारे लेखक भी उन पत्रिकाओं तक पहुँचे और हिमाचल से लिखी जाने वाली कविता की हिन्दी पट्टी में अलग पहचान बननी शुरू हुई।

अजेय : सहमत लेकिन ये सब बहुत बाद के दशकों में हुए डेवलपमेंट्स हैं। तकरीबन सन् 2010 के बाद की बातें हैं, वह भी खास कुल्लू के भीतर ये घटित हुआ। इस में जिलाधीश राकेश कंवर की भी भूमिका रही। उससे पहले मंडी में 2004 का दो दिवसीय प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन और कुल्लू में 2005 का तीन दिवसीय रिनचेन ज़ङ्पो सभा का मेगा इवेंट हमें नहीं भूलना चाहिए। एक माहौल बन पाया जब शिमला से बाहर और हिन्दी साहित्य के भौगोलिक इंटीरियर में।

निरंजन देव शर्मा : फिर भी जिस चीज़ का अभाव रहा, जो पहले वाली पीढ़ी के दौर में ज़्यादा रहा और उसके बाद भी, वह कविता की कार्यशालाओं का न होना था। बाहर से जो बड़े कवि हमारे यहाँ आते थे उनके साथ चार दिन, हफ्ते की कार्यशालाओं की संभावनाओं को देखा जाता तो कुछ चीज़ें अलग तरह से होतीं।

मोहन साहिल : लेकिन अब पत्रिकाएँ निकलने और उन्हें पढ़ने का दौर पीछे छूट रहा है। जो पत्रिकाएँ छप भी रही हैं वे केवल उसी तक सीमित हैं जिसकी रचना उसमें होती है। ठियोग में सर्जक के अंक आम पाठकों तक पहुँचते थे लेकिन उनमें ऐसी रुचि नहीं पैदा हो पाई की वे सर्जक को ढूंढे और पढ़ें। लेखन कर्म भी अब केवल अस्थाई प्रसिद्धि के लिए हैं। कोई मुहिम नहीं है न समाज की विसंगतियाँ दूर करने की कोई तड़प ही लेखकों में दिखती है। सब फ़कत नाम और सम्मान चाहते हैं।

अनूप सेठी : मुझे नहीं लगता कि बोलियों की वजह से या पंजाबी से नज़दीकी की वजह से हिमाचल की हिंदी कविता के पनपने पर कोई असर पड़ा है। हमारे यहाँ शिक्षा का मुख्य माध्यम हिंदी भाषा ही रही है। कांगड़ा अगर पंजाब का हिस्सा बना रहता तो वहाँ की भाषा पंजाबी हो जाती और लेखक शायद पंजाबी भाषा में लिखते। हिंदी भाषी होने के बावजूद हम लोग हिंदी पट्टी से उस तरह नहीं जुड़ सके जिस तरह उत्तर प्रदेश के पहाड़ या बिहार के इलाके जुड़े रहे हैं। हम लोग शायद हिंदी की पेरीफेरी पर हैं। हाशिए पर होने की तकलीफें होती ही हैं। आपने संकेत किया ही है कि लाहौर हमारे लिए नज़दीक था पर आज़ादी के बाद चंडीगढ़ उस तरह केंद्र नहीं बन पाया। पंजाब के लेखक भी जैसे मोहन राकेश और बाद में रवींद्र कालिया पंजाब से बाहर चले गए। कुमार विकल और उपन्यासकार जगदीश चंद्र ने ज़रूर अकेले अलख जगाए रखी। रमेश कुंतल मेघ भी अपने बल पर सामने आए।

हिमाचल में उर्दू, अंग्रेज़ी, संस्कृत, पहाड़ी भाषा की गतिविधि यूँ तो चलती रही है, पर वह अखिल भारतीय स्तर पर कहाँ ठहरती है, पता नहीं। इनके बरक्स हिंदी कविता ने खूब संघर्ष किया है। श्रीनिवास श्रीकांत, केशव, तुलसी रमण, रेखा, कुमार कृष्ण, अमिताभ, ज़िया सिद्दिकी, अवतार एनगिल आदि को अपना रास्ता शायद खुद ही बनाना पड़ा है। इनके पास इलाहाबाद या बाद में दिल्ली जाकर बसने के विकल्प नहीं थे। यह मुझसे तकरीबन एक दशक बड़ी पीढ़ी है। मेरे शुरुआती वक्त में भी संचार साधन बहुत सीमित थे। अखबार शाम को या दूसरे दिन मिलता था। मुख्यधारा की पत्र-पत्रिकाओं से कोई परिचय नहीं था। पुस्तकों की सुविधा नहीं थी। मेरी पिछली पीढ़ी के लिए तो समय और भी कठिन रहा होगा। अलग-थलग पड़े रहने के बावजूद मुख्यधारा के समकक्ष आने के लिए मेरे इन वरिष्ठ कवियों

ने कितनी मेहनत की होगी, सोचा जा सकता है। इन्होंने हमारे लिए एक रास्ता बना दिया और दूसरी तरफ मेरे बाद की पीढ़ी, खासतौर से जो संचार क्रांति के साथ-साथ आई है, उसे संचार क्रांति का लाभ मिला है। उसके सामने एक तो वरिष्ठ पीढ़ी है जिसे देखकर वह अपना रास्ता चुन सकती है। दूसरे, वह लगभग मुख्यधारा से जुड़ी भी है। यह पीढ़ी उस तरह से उतनी अकेली और अलग-थलग नहीं है। सोचिए मधुकर भारती जैसे व्यक्ति को अपनी कविता की राह बनाने के लिए कितनी मेहनत करनी पड़ी होगी। मोहन साहिल को उसकी तुलना में आसानी रही होगी। और ओम भारद्वाज के लिए यह संघर्ष उससे भी ज़्यादा आसान रहा होगा।

निरंजन देव शर्मा : भाषा के तौर पर यहाँ के कवि की हिन्दी भाषा में पैठ के मुद्दे पर आप लोग बात कर रहे हैं, जबकि मुद्दा शिल्प से जुड़ा हुआ है। हमें नए शिल्पगत प्रयोगों पर भरोसा नहीं हो पा रहा था। मुख्यधारा से चल कर जो कविता यहाँ आ रही थी अधिकतर उसी शिल्पगत ढाँचे में अपने कथ्य फिट करने की कोशिश होती रही। बस कविता का एक ढांचा दोहराया गया लंबे समय तक। जिसमें मुद्दे तो थे पर वह धार न थी जो उन्हें प्राणवान बनाती। बावजूद इसके अभी जो स्थिति बनी है यहाँ से लिखी जाने वाली हिन्दी कविता की, उसने एक सफर तय किया है। अलग पहचान भी बनी है फिर भी वृहद स्वीकृति के लिए कुछ इंतज़ार करना होगा।

अजेय : यह अच्छा है कि हमारी चर्चा एक्सक्लूसिवली कविता पर आ रही है! मतलब आप दोनों अपने से बाद की पीढ़ी में ग्रोथ देखते हैं। कारण अनेक होंगे। एक कारण यह भी हो सकता है कि अनूप सेठी के बाद की पीढ़ी के कवि विशुद्ध ग्राम्य परिवेश से निकल के आ रहे हैं, और काफी पिछड़े इलाकों से, और निम्न मध्य वर्ग से भी। और वे उसी परिवेश में बैठकर लिख भी रहे हैं। वह परिवेश और वह देहात की खुशबू उनमें अधिक नज़दीकी अनुभवों की तरह आ रही है। आप और आप से पहले की पीढ़ी का चूँकि कार्यस्थल शहर हो गया और तद्नुसार जीवन शैली भी बदल गई थी। फलस्वरूप वह देहाती और पसमांदा चेतना एक नोस्टेल्जिया भर के रूप में आ पाई। देखना होगा कि समकालीन हिंदी कविता का पाठक पिछड़े ग्राम्य इलाकों और वर्गों में ही अधिक है। कस्बे और नगर अधिकतर अंग्रेज़ी की ओर चले गए हैं। मतलब अन्य सुविधाओं के अलावा यह भी एक 'एज' (edge) मिला बाद की पीढ़ी को। जिस में साहिल और ओम के अलावा निशांत, आत्मा और स्वयं मैं भी शामिल हूँ। और यह सततता दिनेश शर्मा, विवेक भारद्वाज और पवन ठाकुर तक चली जा रही है। हमें याद रखना होगा कि इस नई पीढ़ी में कुछ विशुद्ध नागर चेतना और शहराती संस्कारों के कवि भी हैं–प्रदीप सैनी, अशोक कुमार, ईशान मार्वल और शुभम नेगी की कविताओं पर गौर करें...। हाल-फिलहाल के संकलनों और पत्र-पत्रिकाओं में और भी ऐसे काफी युवतर लोग दिख रहे हैं। ये लोग और भी ज़्यादा हाईटेक और साहसी हैं। टूल्स को लेकर भी और कंटेंट के मामले में भी। धड़ल्ले से तमाम काव्य वर्जनाएँ तोड़ रहे हैं। यह हाईटेक स्मार्टनेस स्वागत योग्य है और मैं तो दुस्साहस को भी कवि का गुण मानता हूँ। शायद मैं रख पाया ठीक से अपनी बात?

अनूप सेठी : हम मेरी पीढ़ी बेहतर का खेल न खेलें, मेरे विचार से। और पिछली पीढ़ी के लोग भी गाँवों से निकलकर ही आए थे। नौकरी वगैरह के चलते शिमला में रहे। प्रदेश में शिमला ही एक बड़ा शहर था जहाँ साहित्यिक गतिविधि थी। उसके बाद मंडी। बाकी

शहर सोतड़ ही थे।

अजेय : ऐसा आशय कतई नहीं, आपने नई पीढ़ी की सुविधाओं का हवाला दिया था, उसमें से एक विचार निकल आया। फिर मसला पीढ़ियों के फर्क का है भी नहीं। हम क्षेत्रों में फर्क की बात कर रहे थे। और अधिक गौरतलब है, उत्तराखण्ड। वे लोग अपने बंदों को कायदे से प्रोमोट करते आए हैं। ऐसा सोचना ठीक रहेगा क्या? और यह भी कि हिमाचल में हम स्वस्थ आलोचना या कहें कि व्यापक पाठकीयता विकसित नहीं कर पाए?

अनूप : मेरे खयाल से वहाँ रहते हुए जिन लोगों ने कविता की है उनके नाम गिन लिए जाएँ तो स्थिति और साफ हो जाएगी।

अजेय : हम्ममम...सुमित्रानन्दन पंत, गिरदा, मंगलेश डबराल, वीरेन डंगवाल, हरिश्चन्द्र पांडे, लीलाधर जगूड़ी बस यही नाम याद आते हैं तुरत-फुरत। शेखर जोशी, रमेश चन्द्र शाह, शैलेश मटियानी और विद्यासागर नौटियाल तो कथा के लोग थे। अधिकतर ने देहली, यू.पी. सी.पी. में रह कर लेखन किया है। पर नए लोग तो इंटीरियर में रहकर ही लिख रहे हैं। दो उदाहरण देता हूँ रेखा चमोली और महेश पुनेठा। मुझे अभिभूत करते हैं। और भी बहुत से लोग हैं। शेखर पाठक भी अब अधिकतर पहाड़ पर ही रहते-विचरते हैं। उनकी पहाड़ पत्रिका देखी है आप लोगों ने? बहुत बड़ा वेंचर है, साहब। हिमाचल में ऐसा कोई महा आयोजन नहीं है।

अनूप सेठी : यही तो फर्क मैं बताना चाह रहा था संचार क्रांति के बाद पहाड़ी इलाके भी मुख्य धारा के बहुत करीब आ गए हैं। पहले जो नाम आपने दिखाए वह सारे पढ़ाई या नौकरी के लिए मैदानों में आए और फिर उन्होंने वही लेखन किया गिर्दा शायद अपवाद है। नए लोगों को, हमारे यहाँ, उत्तराखंड में और जम्मू कश्मीर में भी, भले ही लोग कम हैं, लेकिन मुख्यधारा से जुड़ने की ज़्यादा सुविधाएँ मिली हैं।

मोहन साहिल : युवतर पीढ़ी के पास अवसर अधिक हैं, ये ठीक है। लेकिन उनके पास अपने अनुभव कम और पढ़ने से अर्जित हुआ ज्ञान अधिक है। मेरा मानना है कि कविता अपने निजी अनुभवों से अधिक निखरती है। हर कवि अपनी-अपनी जगह एक युद्ध लड़ रहा है। उसके जीवन के उतार-चढ़ाव और उसके आसपास घटती घटनाएँ। वह इन सबको कितना आत्मसात कर पाता है और शब्दों में गढ़ सकता है ये उसकी क्षमता पर है। अवसर केवल भाषा, शैली सीखने को ही मिल सकते हैं। अनुभव और संवेदना तो कवि के भीतर होने ही चाहिए कवि चाहे दुर्गम इलाके का हो या शहर का।

अजेय : युवतर पीढ़ी के पास अनुभव कम हैं, यह कह रहे हैं आप? क्या इसका मतलब यह भी समझा जाए कि इस पीढ़ी के जीवन में संघर्ष कम हैं? यूँ पीढ़ियों का संदर्भ यहाँ प्रसंगवश ही आया था। यह सब हमारी चर्चा में नहीं था।

मोहन साहिल : संघर्ष हैं लेकिन इनके लिए जो पिछली प्रीढ़ी ने संघर्ष किया वह इनके संघर्ष के आगे कुछ नहीं। वो पीढ़ी रोटी के लिए लड़ रही थी ये पीढ़ी सुविधाओं के लिए लड़ रही है। जिन्होंने पत्थरों को चुनकर बगीचे बनाए, सड़कें बनाई और न जाने क्या-क्या। वो पीढ़ी इनके लिए रास्ते बनाकर गई। आज तो सिर्फ चलना है। मैं चार-पाँच दशक पहले जो नीलामी के कपड़े पहनता था। मेरे गाँव के आसपास कई लोग ऐसे थे जिनके कपड़ों का असली रंग नहीं दिखता था। हम लोग स्कूल की पाँच-दस पैसे फीस नहीं जुटा पाते थे।

मलेशिया और खद्दर के कपड़े आज की पीढ़ी को पता तक नहीं। आज के और पिछली पीढ़ी के संघर्ष में बहुत अंतर है। कृपया हमारे पूर्वजों की मेहनत को कम करके न आंकें।

कविता अभावों, असमानता, शोषण आदि-आदि से निकलती है। आप फैज को पढ़ें या धूमिल को। यहाँ तक कि मुक्तिबोध, केदारनाथ सिंह, बाबा नागार्जुन--बहुत दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास...आज ये विषय नहीं हैं। बहुत से तो राजनैतिक एजेंडों के तहत लिख रहे हैं एक तरह की नारेबाजी। केवल विरोध, विरोध और विरोध। और जो जिस चीज का विरोध कर रहे हैं अवसर मिलने पर भोगने से नहीं चूकते।

अजेय : बिलकुल सही कह रहे हो। लेकिन साहिल भाई, सवाल इसके एकदम उलट था। वो यह कि धुर अभाव के दिनों में हमारे यहाँ बहुत सशक्त कविता नहीं निकल कर आई, बहुत बाद में आपकी पीढ़ी में अधिक धारदार और मारक बनकर आई है। वो अभाव भी और संधर्ष भी! यह ऐसा सर्वविदित सत्य है, कि समर्थन में उदाहरण देने की ज़रूरत भी नहीं है। अभाव और संघर्ष के परिदृश्य पर पिछली पीढ़ी के कवियों की दृष्टि न गई ऐसा नहीं है, मुझे दीनू कश्यप शिद्दत से याद आते हैं और योगेश्वर शर्मा की एक कविता याद आती है। लेकिन उन विषयों पर कुछ ताकतवर चीज़ नहीं सामने आई। बाद में अनूप सेठी, कुलदीप शर्मा और यादवेन्द्र शर्मा में यह चेतना बढ़ती दिखी और निशांत और साहिल में चरम पर दिखाई देती है। मेरा आब्ज़रवेशन बायस्ड और पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हो सकता है। पर मैं पिछली पीढ़ी के संघर्ष को कम करके कदापि नहीं देखता।

मोहन साहिल : उस समय जो कविता लिख रहे थे उनके जीवन पर नज़र डालने की ज़रूरत है। किसी कवि को जाने बिना उसकी केवल कविता जानना कठिन है जैसे मधुकर भारती।

अजेय : भारती जी एक अलग ही व्यक्तित्व थे। लेकिन, छोड़िये हम कवियों के व्यक्तिगत भीतर तक नहीं जाएँगे।

मोहन साहिल : हो सकता है कुछ सत्ता वालों को खुश करने के लिए खुशफहमी वाली कविता लिखते हों। वैसे उस समय उर्दू का चलन अधिक था और उर्दू में हुस्न और इश्क ऊपर थे। तुकबंदी की भी बंदिशें थीं। और शायद अधिकतर लिखने वाले सरकारी नौकरियों में थे। कवि गोष्ठियाँ भी अधिकतर सरकारी होती होंगी।

अजेय : आरंभ में हमने अस्मिता की बात की थी और आंचलिकता / स्थानिकता से उसे जोड़ने की कोशिश की थी। उस पर कोई कुछ नहीं बोला। मैं वरयाम सिंह को इस विषय के पायनियर कवि के रूप में देखता हूँ। उस पीढ़ी में स्थानिकता पुरज़ोर आग्रह के साथ केवल वरयाम सिंह की कविताओं में आती है। आप उनका 'हिमाचल समाचार तथा अन्य कविताएँ' संग्रह देखिए। आज भी अपनी टिप्पणियों, आलेखों में स्थानिकता, हिमाचलियत, पहाड़ीपन के सजग और मुखर प्रवक्ता हैं। लेकिन आगे यह परंपरा कुछ क्षीण हुई, क्या इसका संवाहक न मिल पाया? क्या समझा जाए कि हिंदी कविता में इस तरह की आंचलिकता के लिए स्पेस नहीं है अथवा यह खोज ही गलत है? मतलब वैसी आग्रहपूर्ण स्थानिकता खोजना।

मोहन साहिल : मैं रसूल हमजातोव के 'मेरा दागिस्तान' की बात कर रहा था। लगता था मैं हिमाचल के पहाड़ों में हूँ। सोवियत के समय के साहित्य ने दुनिया के लेखकों, कवियों को जागृत किया कि वे संघर्ष लिखें। हमारे यहाँ ग्लोबल बनने के चक्कर में स्थानिकता

से डरते रहे कि कहीं स्थानीय कवि न बन जाऊँ। वरयाम ने दुनिया-भर का साहित्य पढ़ा-पढ़ाया है। उन्हें सब पता है असल में महान बनने के लिए कई कवि भारी भरकम शब्दों और ग्लोबल विषयों को चुनते हैं। फैशन के तहत लिखते हैं। उनके विषय भी चल रहे फैशन के तहत ही आते हैं। लेकिन जो कवि अपने आसपास के जीवन और प्रकृति से कच्चा माल लेगा उसकी कविता अधिक विश्वसनीय और दिल छूने वाली होगी।

अजेय : आपने स्थानिकता का ज़रा साधारणीकरण कर दिया। अपने आसपास के जीवन और प्रकृति से कच्चा माल तो उनकी पीढ़ी के हर कवि ने उठाया ही है। मैं आंचलिकता और स्थानिकता का ज़िक्र हिमाचलियत व हिमाचली अस्मिता के हवाले से कर रहा हूँ। जो खास वरयाम सिंह में दिखता है और पूरी ज़िद के साथ दिखता है। हमज़ातोव की बात आपने अच्छी छेड़ दी। उसमें दागिस्तान की आंचलिकता तो है पर उसकी कविता रूसी में नहीं अवार भाषा में थी। यथा हमारे संदर्भ में, हिंदी नहीं सिराजी, कांगड़ी भाषा में। यूँ वरयाम सिराजी भाषा में निरंतर लिख रहे हैं, पर यह विषयांतर हो जाएगा। मुझे लगता है कि आंचलिकता शायद कविता में अवैध है, लेकिन मैं चाहता हूँ कि अनूप सेठी और निरंजन इस पर ज़रूर कुछ कहें। अस्मितावादी साहित्य पर भी कुछ कहें, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श। ये सब हिमाचल की कविता में किस तरह से रिफ्लेक्ट होता है?

निरंजन देव शर्मा : 'आंचलिकता' जैसे विशेषण का प्रयोग कथा साहित्य के संदर्भ में होता रहा है और वहाँ भी कई बार स्थानीय देशज शब्दों के प्रयोग मात्र को आंचलिकता मान लिया जाता है। कविता में देसीपन या स्थानीय अस्मिता की पहचान करने में बोलियों से आए देशज शब्दों का रचनात्मक प्रयोग कविता को न केवल समृद्ध करता है, बल्कि अलग पहचान भी देता है। यह पुनः शिल्प का मसला है केवल स्थानीय शब्दों के कविता में आ जाने से कविता धारदार नहीं होगी। समूचे शिल्पगत प्रयोग को कैसे स्थानीय शब्दावली समृद्ध करती है यह देखने वाली बात होती है।

अजेय : बिलकुल, सहमत हूँ आप से।

निरंजन देव शर्मा : मुख्यधारा का स्त्री विमर्श या फिर दलित, आदिवासी विमर्श का उभार भी अपने यहाँ कोई बड़ी हलचल पैदा नहीं कर पाया। यहाँ से कोई विमर्श पैदा होने की बात दूर है।

अजेय : नई पीढ़ी में संभावना दिखती है? वैसे देखा जाए तो छिट-पुट स्वरों के सिवा हिंदी की मुख्यधारा में ही कहाँ कोई बड़ी चीज़ सामने आई? ये विमर्श शुरू ही हिंदीतर भाषाओं में हुए थे।

मोहन साहिल : ज़बरदस्ती आंचलिकता घुसेड़ना भी ठीक नहीं। यदि अंचल के बारे में ही सोचते रहेंगे तो गड़बड़ हो जाएगी। कविता जैसे निकल रही है आने देनी चाहिए।

अजेय : ज़बरदस्ती...वो तो स्वतः फिल्टर हो जाता है। क्या वरयाम सिंह की कविता में आपको लगा कि अति स्थानिकता है या जबरन है? या हमज़ातोव में?

मोहन साहिल : वरयाम और रसूल के भीतर रचा-बसा है। जैसे आप में भी है। मैं उनकी बात कर रहा हूँ जिनमें स्वाभाविक रूप में नहीं आती है।

अजेय : साहित्यिक प्रयोग जब शुरू होते हैं बहुत-सी चीज़ें सायास और असहजता के साथ आती हैं। हाँ, उनकी समीक्षा ज़रूर होनी चाहिये।

अनूप सेठी : आंचलिकता अवैध तो नहीं है, उसे संभव करना कठिन है। स्थानीयता के तौर पर अधिक आती है। या शब्दावली में। उसमें हिमाचली भाषाएँ-बोलियाँ हिंदी के उतनी नज़दीक नहीं रहतीं जितनी अवधी, ब्रज, भोजपुरी, बुंदेली, मालवी आदि हैं।

अजेय : जी, आप मानें न मानें; हमें हट-फिर कर भाषा पर आना पड़ रहा है।

अनूप सेठी : सुंदर लोहिया का उपन्यास आया था बहुत पहले 'धार की धूप' शायद यही नाम है। अब हिंदी पट्टी में धार शब्द की धार ही भौंथरी हो गई। हिंदी में उसके अर्थ अलग हैं, हमारी बोलियों में अलग।

अजेय : इन्हीं दूरियों की बात थी, ये भाषिक दूरियाँ हैं जो संप्रेषण में बाधा डालती हैं। पूरब का आलोचक और पाठक इन्हें भाषायी झोल समझता रहा होगा और हिमाचल की कविता सीरियसली पढ़ी नहीं जा सकी। उपन्यास में तो फिर भी चल सकता है कविता में इतना स्पेस नहीं कि खुलासा करने बैठ जाएँ। पर साथ में यह भी कि 'धुआरी' भाषा का प्रयोग करके धार तो भोथरी पड़नी ही थी। एक वरिष्ठ हिंदी कवि ने कहा था कि हिमाचल की कविता मानों हिंदी पट्टी की अनूदित अथवा 'री-रिटन' कविता ही हो। तो मैंने खुंदक में कहा कि हम 'हिमाचली हिंदी' बनाएँगे। राजस्थानी हिंदी, हैदराबादी हिंदी, छत्तीसगढ़ी हिंदी, मैथिली हिंदी हो सकती है तो हिमाचली हिंदी क्यों नहीं? ट्रेक पर रहेंगे कि यह भाषा की बहस नहीं है। शुरुआत लेकिन गद्य से करनी पड़ेगी। और यह बड़ा लोचा है! किसी भी भाषा का साहित्य सर्वप्रथम काव्य में ही विकसित होता है। ऐसा कोई नियम है क्या, अनूप सेठी जी?

अनूप सेठी : यूँ तो हर कोई मानक हिंदी भाषा में ही लिखता है फर्क तो उसके कहने में होता है।

अजेय : बिलकुल, काव्य भाषा को, उसके मुहावरे को पकड़ना, बरतना एक अलग क्राफ्ट है। लेखन का मामला बोलचाल की भाषा को पकड़ने जैसा सीधा नहीं है, ध्यान रहे कि हिंदी हमारी अर्जित भाषा है।

मोहन साहिल : लेकिन महासुवी बोली में लिखित साहित्य मैंने नहीं पढ़ा।

अजेय : बिलकुल शून्य तो नहीं, पर कम दिखता है। कांगड़ी, मंड्याली में अपेक्षाकृत अधिक है। मैं यह पूछना चाह रहा हूँ कि भविष्य में एक लगभग समरूप सांस्कृतिक एंटिटी बन सकती है क्या हिमाचल की? पहाड़ी और भोटी भाषाओं को सरकारी मान्यता दिलाने के चक्कर में हम एक ऐसी भाषिक बाइनरी बना देने वाले हैं, कि यहाँ पनप रहे हिंदी साहित्य को इसकी मार निश्चित रूप से झेलनी पड़ेगी, साथ में दुर्लभ व संकटग्रस्त लोक भाषाओं की और भी ऐसी-तैसी हो जानी है।

मोहन साहिल : मुझे ये असंभव लगता है। यहाँ तो कई वर्ष तक ऊपरी और निचले हिमाचल का झगड़ा चलता रहा है। फिर वो राजनीतिक बहस बन गयी। दोनों भागों में रिश्ते भी अब कुछ जुड़ने लगे हैं जहाँ एक उम्मीद की किरण दिखाई देती है। जब तक लोग आपस में घुलेंगे-मिलेंगे नहीं तब तक कुछ नहीं हो सकता। बोलियाँ भी तभी कोई एक रूप लेंगी।

अजेय : मुझे लगता है हिन्दी भाषा में लिखा गया साहित्य ही एक मात्र घटक है जो इस खाई को पाट सकता है। ऐसे ही कुछ सोशो पालिटिकल एवं भाषिक कारण दिखते हैं किसी क्षेत्र विशेष में साहित्य का त्वरित और सहज विकास न हो पाने के। मैं गलत हो सकता हूँ।

मोहन साहिल : जिस प्रकार जन सरोकार के मुद्दे उत्तराखंड के लोक साहित्य में दिखाई देते हैं वह हमारे यहाँ नहीं हैं।

अजेय : सरोकार आंदोलन से ही सामने आते हैं।

मोहन साहिल : तो हमारे यहाँ सेब आंदोलन हुआ, आलू आंदोलन हुआ लेकिन एक भी कविता कहानी नहीं बनी। यहाँ तक की आज़ादी से पूर्व रियासतों में हुए आंदोलन भी कहीं साहित्य में नहीं हैं। बिलासपुर में भाखड़ा डैम बनने के समय विस्थापितों की कहानी बयान करते कुछ गीत ज़रूर हैं।

अजेय : हिंदी में भक्ति कविता लिखते-लिखते सामाजिक सरोकार आ गए थे। कबीर और तुलसी को देखिए। नज़ीर से लेकर गालिब तक को देखिए। रीति और शृंगार कविता लिखते-लिखते सामाजिक सरोकार आ गए थे। पृष्ठभूमि में बहुत बड़े आंदोलन ही तो थे।

मोहन साहिल : हमें अभी प्रतीक्षा करनी होगी।

अजेय : समय लगेगा, लेकिन इसी धम्मड-धूस में पकेगा एक सामाजिक आंदोलन। यह तय है। प्रमोद कहा करता था न, हिमाचल का समाज सड़ा (पका) नहीं अभी तक ठीक से।

मोहन साहिल : हिमाचल के बड़े हिस्से में अभी बसने की प्रक्रिया चल रही है। पहले सामूहिक परिवार थे। अब टूटकर अलग हो रहे हैं। नए घर, नई बस्तियाँ बस रही हैं। अब पहाड़, बिकने, टूटने, पिसने शुरू हुए हैं। चोटियों की बिक्री हो चुकी है वहाँ जश्न शुरू हो चुके हैं। हमारे युवा नौकरियाँ तलाश रहे हैं। कूड़ा-कचरा जंगलों में बिखरने लगा है। चोटियों के नीचे सेप्टिक टैंक बन रहे हैं जिनकी दुर्गंध जल्द ही हमारे घरों के भीतर तक आयेगी। तब शायद पहाड़ के लिए कोई आंदोलन करे।

अजेय : आप ने लिखा था—एक दिन टूट जाएगा पहाड़। अनूप सेठी और कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कवियों का एक संकलन आया था—खुल रहे हैं पहाड़! ये शीर्षक गवाह हैं कि तीन दशक पहले जनजीवन बहुत 'स्लो' और 'बंद' किस्म का था हिमाचल का।

मोहन साहिल : जी। एक से दूसरे स्थान पर जाने में ही दिन गुज़र जाता था।

अजेय : रेखा वशिष्ठ की कविताओं में उस बंद समाज में से बाहर झांकने का प्रयास करती आशंकित, सहमी स्त्री का प्रभावशाली चित्रण दिखता है। नहीं?

मोहन साहिल : मुझे एक बार फिर पढ़ना पड़ेगा संग्रह।

अजेय : बार-बार पढ़ी जा सकती हैं वो कविताएँ।

मोहन साहिल : वैसे रेखा जी की कविताएँ मुझे पसंद हैं।

अनूप सेठी : आप लोग आंदोलनों की बात कर रहे हो, अब आंदोलन और कविता में भी कितना संबंध रह गया है, पता नहीं। वाम दल अप्रासंगिक से हो गए हैं। एन.जी.ओ. कल्चर ने सामाजिक आंदोलनों की धार कुंद की है। किसान आंदोलन के पीछे संभवतः वाम था पर उस पर आढ़ती छाए रहे। (अभी एक पत्रिका का अंक भी आया है इस पर, अभी पढ़ा नहीं) जन मानस तार्किकता छोड़ पुरातन और हिन्दू गायन की तरफ झुक गया है। दुनिया के कई देशों में दक्षिण की तरफ झुकाव है। अब हमने रूस-यूक्रेन युद्ध को पचा-सा ही लिया है। कविता कहाँ से ऊर्जा पाएगी और मनुष्यता का लड़ कैसी पकड़ेगी पता नहीं। लोकल

ट्रेन में ज़रा फुर्सत मिली तो खड़े-खड़े टाइप कर दिया। ज़रूरी नहीं ये बातें काम की ही हों।

अजेय : हद है, काम की क्यों नहीं होंगी? पूरा दृष्टिकोण झलक रहा है। हमारे पाठक के लिए अति महत्त्वपूर्ण है, विडम्बना यह है कि हर आंदोलन को कुछ न कुछ वित्तीय 'बैक अप' चाहिए ही। और देगा भी वणिक ही, वरना किस के पास है पैसा?

मोहन साहिल : और जो ट्रेन में खड़े हैं विचार भी केवल उन्हीं के पास बचे हैं।

अनूप सेठी : बोली हिंदी का संबंध ज़्यादा दिखता नहीं। खड़ी बोली (हिंदी) हमारी सोचने की भाषा भी है। बोलियाँ और जीवन कहीं भीतर रहता है। कविता मानक हिंदी सांचे में ढल कर ही निकलती है। बुनावट में यहाँ के जीवन बिंब झलकते हैं। वही हमारी विशिष्टता है। कहते हैं हर पीढ़ी का अपना आलोचक हो तो कविता सामने आ जाती है। हमारा कोई आलोचक नहीं रहा। श्रीनिवास श्रीकांत कुशाग्र मेधावी और ईमानदार थे। पर प्रकाशवृत्त में नहीं आ पाए। पत्रिकाएँ भी नहीं रहीं जो यहाँ की कविता को रेखांकित करतीं। मैं विशेषज्ञ की तरह बोल रहा हूँ, लेकिन मैं हूँ नहीं।

अजेय : ऐसा न कहें, हम सब मिल-बैठ कर कुछ लॉजिकल स्पेक्युलेशन कर ही सकते हैं, विशेषज्ञ चाहे न हों! यूँ भी कौन विशेषज्ञ हो सकता है इन मामलों का?

अनूप सेठी : दलित विमर्श का सवाल—मुझे नहीं लगता। हमारे यहाँ दलित फाँक उस तरह शायद है नहीं। रेखा ढडवाल की कविता में स्त्री तत्व दिखता है। इसका यह मतलब नहीं कि बाकियों में नहीं है। स्त्री जीवन, संघर्ष, चेतना सभी में दिखती है।

अजेय : इन चेतनाओं का प्रखरता के साथ अभिव्यक्त न होना भी एक कमज़ोरी या पिछड़ापन ही हो सकता है। अस्तु, ध्यान देने पर पता चलता है कि स्त्री चेतना हमारी कविता की मुख्य प्रवृत्ति है। सबसे सशक्त, सबसे परिपक्व कविताएँ यहाँ इसी विषय पर मिलीं मुझे। हम लैंगिक समानता (gendre equality) के बारे तभी सोच सकते हैं जब हम में लैंगिक चेतना (gender sensitivity) हो और यह स्त्री चेतना के साथ-साथ दलित और आदिवासी चेतना का भी सच है। ऐसा अस्मितावादी विचारक मानते हैं। दलित फाँक ऊपरी सतह पर बहुत न दिखता हो, अंडरकरेंट आक्रोश तो बहुत दिखता है समाज में। मानेंगे? अभिव्यक्त नहीं हो पा रहा है तो वजह शायद यह आशंका है कि बात बहुत मुखर न हो जाए। चीज़ें पकेंगीं तो बाहर आएँगी। आ रही हैं।

हाँ, आपकी आलोचक वाली बात पर सहमत हूँ। शायद उसे कविता छोड़कर आलोचना में उतरना पड़ता है (उदाहरण नामवर सिंह और रामविलास शर्मा) अपने यहाँ ऐसा किसी ने नहीं किया। कविता पर लिखने से सब डरते रहे शायद।

अनूप सेठी : हाँ। आत्मा से भी उम्मीद थी और है। जैसे कथा में निरंजन से है।

अजेय : सही, हम गाहे-बगाहे आत्मा रंजन को प्रोवोक करते रहते हैं, लेकिन आलोचना में रिस्क तो है।

अनूप सेठी : हाँ, लोग भी तारीफ न पाने पर नाराज़ हो जाते हैं।

अजेय : यह बड़ी आफत है। मसला यह भी है कि हिमाचलियत में लिहाज भी एक नैतिक मूल्य है।

निरंजन देव शर्मा : लिहाज भी है और पाचन क्षमता का दुरुस्त न होना भी कारण है। यदि आप रचनाओं का गंभीर आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हैं तो आलेख का प्रकाशित

तक हो पाना कठिन हो जाता है। तब लिहाजदारी आ जाती है। प्रशंसात्मक आलेख लिखने-लिखवाने की रिवायत ने स्थानीय रचनात्मकता का खासा नुकसान किया है।

मोहन साहिल : अपने कूड़े को भी लोग सोना कहलवाना चाहते हैं यहाँ ये समस्या अधिक है। आत्मा रंजन ने मधुकर भारती पर भी काफी गंभीर बातें कहीं खासकर उनके व्यक्तित्व पर। कवि के लिए ज़रूरी है...

अजेय : कविता पर बोलने के लिए किसी कवि को ही आगे आना पड़ेगा।

अनूप सेठी : मुख्य धारा की पत्रिकाएँ आने लगीं तो यहाँ की कविता भी गूँजने लगी। प्रदेश की विपाशा को छोड़कर उल्लेखनीय पत्रिकाओं के नाम? खास याद नहीं आते।

अजेय : पत्रिकाएँ जो हिमाचल से निकलीं, शुरू में बेशक कम थीं, लोक संपर्क विभाग की हिमप्रस्थ और गिरिराज... दीनू कश्यप की 'क्वाली', केशव नारायण की 'शिखर' पर बाद में तो खासा सर्कुलेशन रहा लघु पत्रिकाओं का। मधुकर भारती की 'सर्जक' के पाँच अंक निकले थे। प्रमोद रंजन का साप्ताहिक था भारतेंदु शिखर! इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में। उसने हलचल पैदा की बड़े लेवल पर।

मोहन साहिल : 'सेतु' और राजेंद्र राजन की पत्रिका 'इरावती'।

अजेय : गुरमीत बेदी की 'पर्वत राग' भी। पर जिसने हलचल पैदा की, वह प्रमोद रंजन था। सर, उसके पास स्किल थी चीज़ों को प्रस्तुत करने की।

मोहन साहिल : प्रमोद रंजन एक स्पष्ट विचार से जुड़ा है। उसका जीवन भी संघर्ष से भरा था।

निरंजन देव शर्मा : हिमाचल से निकलने वाली तमाम पत्रिकाओं के बीच प्रमोद रंजन के माध्यम से भारतेन्दु की एक अलग पहचान बनती है। वहाँ लिहाजदारी से आगे निकल कर आलोचनात्मक विमर्श के लिए जगह बनी। वह अभिव्यक्ति के खतरे उठाने के लिए तैयार था पर यहाँ का एक बड़ा लेखक वर्ग उसे झेलने की कूवत नहीं रखता था।

अजेय : प्रमोद ने एक तरह से आईस ब्रेकिंग की थी। पत्रकारिता का ऐसा कौशल दिखाया कि यहाँ की यथास्थिति-वादी माहौल के लिए वह असुविधाजनक हो गया था।

मोहन साहिल : बिल्कुल। उसे अंततः जाना ही पड़ा।

अजेय : हमने 'असिक्नी' निकाली थी। कुल जमा दो अंक।

अनूप सेठी : और हमने 'हिमाचल मित्र'।

अजेय : जी और वो तो खूब लम्बी चली थी। उसे आपने बेवजह बंद कर दिया। मेरा मन था खूब छपूँ उसमें। हाल ही में युवतर पीढ़ी ने 'हियूँद' निकाली है...रितिका ठाकुर ने बड़ी मेहनत की है उसमें।

मोहन साहिल : शिराजा के कुछ अंक ठियोग भी पहुँचते थे। अब काफी समय हो गया।

अनूप सेठी : दूसरे राज्यों की अकादमियों की पत्रिकाओं (साक्षात्कार, मधुमती, इंद्रप्रस्थ भारती, शीराज़ा आदि) के साथ 'विपाशा' को देखना भी दिलचस्प है। शीराज़ा की कहीं चर्चा नहीं होती, वह शायद राज्य तक महदूद रही है। साक्षात्कार और इंद्रप्रस्थ में पूरी हिंदी पट्टी को जगह मिलती रही है। अब नहीं पहले। 'मधुमती' का स्तर भी ठीक-ठाक-सा रहा। 'विपाशा' में बार-बार राज्य के कोटे की बात शायद उठती रही। रचनाओं का स्तर यूँ ठीक-ठाक

रहा, पर बड़े फलक पर चुनिंदा पत्रिका शायद न बन पाई। राज्य की रचनाशीलता पर भी इसमें गंभीर बहसें नहीं चलीं। आप लोग क्या सोचते हैं? राज्य की पत्रिका होने के कारण मुझे विपाशा से प्रेम रहा। पता नहीं यह चर्चा में रहना चाहिए या नहीं।

अजेय : खुलकर लम्बी बहसें न हुई हों, पर सम्वाद दिखता है विपाशा में। बल्कि बहुत स्पष्ट और बेबाक टिप्पणियाँ हैं कहीं-कहीं तो। जो आज के दौर की साहित्य चर्चा में सिरे से गायब है। रही प्रेम की बात, तो यह सब को ही रहा। आसक्ति कहना चाहिए। हिमाचल से निकलने वाली पत्रिका होना इसके अनेक कारणों में से एक रहा होगा और भी ज़रूरी कारण रहे। मसलन एक तो आकर्षक टाईप सेटिंग और डिज़ाइनिंग। पूरे गेट-अप में यह पत्रिका दिखावा पसंद व मुखर न होकर बेहद सौन्दर्याभिरुचिपूर्ण एवं सहजता के साथ प्रस्तुत पत्रिका थी, अब भी है। दूसरे यह कि स्थानीय प्रतिभाओं के साथ-साथ हिंदी साहित्य के वेटेरेन्ज़, महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर कायदे से इस में पेश किए जाते हैं। स्तरीय सामग्री के साथ। इसके पीछे तुलसी रमण की व्यक्तिगत संलग्नता और मेहनत थी। अकारण नहीं है कि हिमाचल की शुरुआती दौर की ज़रूरी हिंदी कविता विपाशा में ही आकार ग्रहण करती दिखती है। रही चर्चा की बात, तो वह तो होनी ही चाहिए इस पर, क्योंकि बहुत अधिक स्थानीय शिकायतों और आरोपों के बावजूद, राज्य की बेहतरीन कविता इसी पत्रिका में छपी है। प्रदेश के बाहर की पत्रिकाओं में यहाँ की कविताएँ व्यापक रूप से बहुत बाद में छपनी शुरू हुईं। लगभग इक्कीसवीं सदी में। विपाशा ने यह काम 1985 से ही आरंभ कर दिया था।

अनूप सेठी : विपाशा तुलसी रमण के संपादकीय कौशल की प्रतिबिंब है।

मोहन साहिल : बिल्कुल सहमत। कविता के चयन को लेकर रमण हमेशा सजग रहते थे। इसी के कारण विपाशा में स्थान न पाने वालों को रमण जी से शिकायत रहती थी। लेकिन रमण जी ने परवाह न करते हुए विपाशा के स्तर से कभी समझौता नहीं किया।

अनूप सेठी : अजेय, आपने तकरीबन सभी अंक देखे हैं। हिंदी के कौन-कौन से प्रसिद्ध कवि छपे हैं? इसी तरह हिमाचल के? कवियों, कथाकारों के चुनाव में संपादक की पसंद-नापसंद भी झलक जाती है। जैसे शायद ही कभी हरनोट या राज कुमार राकेश यहाँ छपे हों।

अजेय : चर्चित समकालीन कवि बहुत अधिक बार नहीं छपे हैं। कविता अंकों को छोड़कर। लेकिन क्लासिक्स में अज्ञेय, रघुवीर सहाय, केदार नाथ सिंह और अशोक बाजपेयी ... आदि पर सामग्री अधिक दिखती है। प्रगतिशील नागार्जुन, छायावादी प्रसाद से लेकर नई कविता और प्रयोगवाद के बहुत से कवि छपे हैं। यही सब लोग अधिक हैं। संपादक के taste का तो असर पड़ता ही है चयन पर, यह अपरिहार्य है। कहानियों पर ध्यान नहीं दिया मैंने, जिन लेखकों के नाम आपने लिए उनकी कविता नहीं दिखी मुझे इसमें। लेकिन यह है कि हिमाचल का शायद ही कोई महत्त्वपूर्ण कवि छूटा हो। रचनाओं के चुनाव की ऐसी कोई कसौटी तय करना कठिन है। एक सामान्य स्तर पर स्वीकार्यता के बाद फिर पसंद का ही मामला हो जाता है। लेकिन विपाशा में यह साफ दिखता है कि संपादक ने अपनी taste के बाहर के लोगों को भी छापा है। बशर्ते कि कवि हिमाचल का हो।

अनूप सेठी : हरनोट और राजकुमार राकेश दोनों कवि के तौर पर जाने भी नहीं जाते। इनमें हिन्दी के बड़े कवियों पर लेख तो छपे, पर क्या उनकी कविताएँ छपी? ज़्यादातर

वही छपे जो शिमला आए। या सम्पादक के संपर्क में आए, या सरकारी कार्यक्रमों में आए।

मोहन साहिल : हरनोट तो इन दिनों लगातार कविताएँ लिख रहे हैं।

अजेय : जी लिख रहे हैं। और एक अच्छे लेखक में विधाओं का आवागमन स्वाभाविक है, शायद ज़रूरी भी। प्रयाग शुक्ल ने एक बार कहा था कि बतौर अभ्यास यह सही रहता है, मोनोटनी टूटती है।

मोहन साहिल : कविता में वाद और विचारधाराओं के अलावा लेखक संगठनों से जुड़ाव भी देखा जाता होगा शायद। प्रगतिशील, जनवादी आदि-आदि, कवि नहीं तो कविता तो इन खांचों में आनी ही चाहिए। ये भी रहा होगा।

अजेय : बेशक। ये सब और तमाम तरह की संपादकीय विवशताएँ। खैर, हमें इस चैट पर आज पूरे दो माह हो गए हैं। तकरीबन खेल-खेल ही में यह एक लम्बी परिचर्चा बन गई। अब इस चर्चा का भरत वाक्य भी कहा जाए?

अनूप सेठी : अपने प्रदेश की कविता के पिछड़ेपन के सवाल के बहाने हमने समाज, सामाजिक-सांस्कृतिक-साहित्यिक हलचलों, साहित्यिक माहौल, अपनी बोलियों आदि को खंगालते, खोलते हुए कवि के संघर्षों और कविता के मिज़ाज को समझने की कोशिश की है। यह चर्चा अनंतिम ही है। इसमें कुछ मिलेगा, कुछ जुड़ने की सम्भावना बनी रहेगी।

अजेय : बिल्कुल अनंतिम है। यहाँ कुछ भी स्थापित करने की कोशिश नहीं की गई है। विमर्श के लिए कुछ सवाल हम उठा सकते थे, वही हम ने किया...मुझे उम्मीद है कि वरिष्ठ पीढ़ी में यह चर्चा आगे बढ़ेगी साथ में हिमाचली कवियों की युवतम पीढ़ी इस डिस्कॉर्स को व्यवस्थित रूप से आगे लेकर जाएगी, क्योंकि ज़ाहिर है, आने वाला समय उनका है और उनके समय की कुछ बेहद ज़रूरी आवाज़ें तथा प्रवृत्तियाँ हमसे छूट रही हैं। इस गपशप में शामिल होने के लिए अपना बहुमूल्य समय देने के लिए आप तीनों का बहुत आभार!

दो कविताएँ

❑ अवतार एनगिल

खिड़कियाँ खोल दो

खिड़कियाँ खोल दो
और बहने दो हवा को
आर-पार
गुज़रने दो इसे
इन बंद कमरों के कैदखानों से

खिड़कियाँ खोल दो
और आने दो धूप को
अपनी नन्हीं बच्ची के गुलनारी ओठों तक
गुदगुदाने दो उसे
अपने गुनगुने अहसास से

खिड़कियाँ खोल दो
ताकि वर्षा की शरारती बूँदें
लौट न जायें
सिर्फ तुम्हारे कांच पर
दस्तक देकर
खिड़कियाँ खोलने के बाद
नज़र का नाता जोड़ो
रेले में बहते दुःख से
सुख से
दफ्तर पहुँचने की जल्दी से
'अंकल' से समय पूछती
मूँगिया फ्रॉक वाली बच्ची से
द्वार खोलो

द्वार खोलो और आ जाओ
सड़क पर।
1988

रुकी हुई हवा

आप्रेशन थियेटर की
पीली रोशनी तले
लेटी है
धानी बालों वाली एक लड़की
जिसकी दीप्त नीली आँखें
अनीस्थिज़िया से
बंद नहीं होती
और हैरान हैं
ज़िन्दा बच्चियों पर
मौत के प्रयोग जारी रखने वाला
विज्ञानी चिकित्सक
अपने गिरवी रखे मस्तक पर
हाथ रखकर
सोचता है विज्ञानी
कि एक कमज़ोर लड़की
बेहोशी की दवा से कैसे लड़ती है
कितना लड़ती है
क्योंकर लड़ती है
कोई नहीं जानता
कोई नहीं जानेगा
कि शल्यशाला के द्वार पर
विशाल मेज़ पर लेटी
किसी महास्वप्न में खोई
रुकी हुई हवा जैसी यह लड़की
कौन है?
क्यों इनकार करती होगी यह
बेहोश होने से
क्यों बहना चाहती है यह
खिड़कियों के आर-पार
चाहती क्यों होगी वह देखना
दीवारों के आर-पार?

जब-जब, बजा था अलार्म
भागे थे रक्षक
अस्पताल में चहुँ ओर
तब-तब, धर दबोचा था
मुस्तैद सेवकों ने
इस खतरनाक रोगिणी को
आज फिर
शल्यशाला के द्वार पर
दिपदिपा रही है
एक लाल बत्ती और अन्दर
हाथों पर दस्ताने चढ़ाकर
विज्ञानी चिकित्सक
रुकी हुई हवा के जिस्म में
सुइयाँ भोंक रहा है
1989

देहावसान 2021

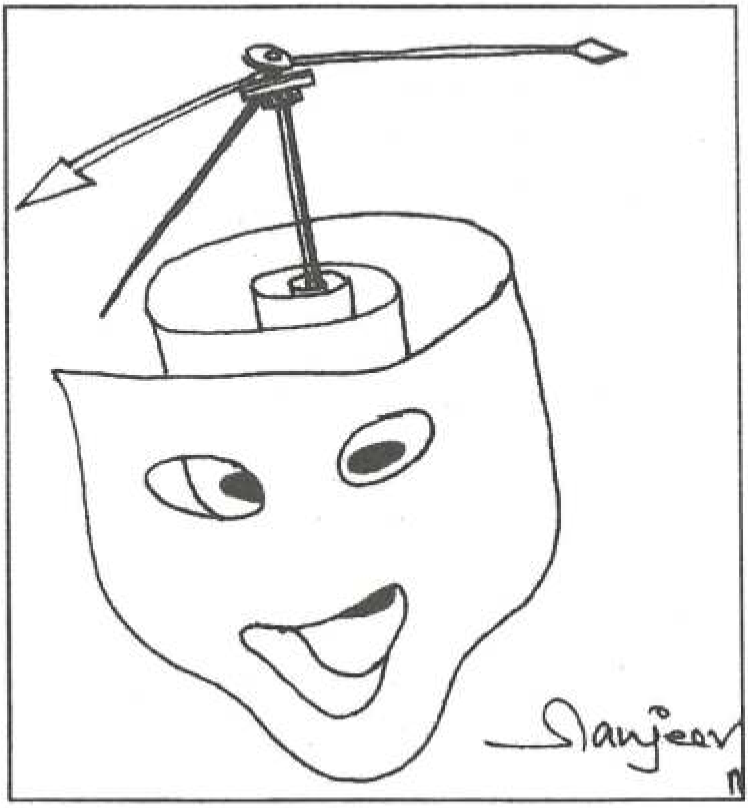

औरत के पाँव

❑ कुल राजीव पंत

पाँव की
दसों उँगलियों के सिर पर
रहती हैं दस औरतें
पाँच-पाँच दोनों पाँव में
छोटे-बड़े कद की।

उँगलियाँ
पूरी गृहस्थी का बोझ उठाती
साथ-साथ
धरती से भी बतियाती
सुनती उसकी धड़कनें
उसे पुचकारती-सहलाती
धरती की पीड़ा
छलक जाती
ठीक औरत के
दुःख की तरह।

औरत चलती
पहले एक पाँव उठता
फिर दूसरा
उठती ज़रा सी एड़ी
उँगलियाँ धरती छूती।

उँगलियों की दाब से
गुदगुदी लगती धरती को
धरती खिलखिलाकर हंसती।

हर सुबह वह इंतज़ार करती
औरतें आएँ उसे गुदगुदाएँ
भूल जाए वह अपने दुःख
कुछ समय के लिए।

पूरी दुनिया की औरतें
गर चल पड़ें एक साथ
उनकी उँगलियों की
गुदगुदाहट से
धरती खिलखिलाकर
लोट-पोट हो जाए

खूब निखर जाए
उस दिन दुनिया
औरतों की धमक से
2021

जन्म 1952, पैतृक गाँव सोलन, हि.प्र.
[सतकुल, सन्नी साइड, जिला सोलन, हि.प्र.-173212]
मो. 85804 49989

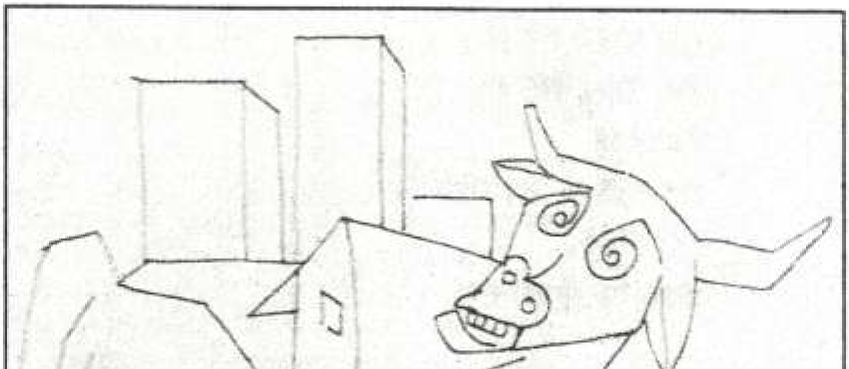

दो कविताएँ

□ सुदर्शन वशिष्ठ

मैडम निहारता बच्चा

अलसुबह तैयार हो कर जाता है
क्लास रूम में बस मैडम को देखता है
एकटक।
क्या क्या करती है मैडम
निहारता
लगातार लगातार लगातार
बार बार बुदबुदाता
यस मैडम यस मैडम यस मैडम।

पहली मैडम
सुंदर छरहरी साँवली
जैसा टीका वैसा सूट
जब आती
अगरबत्ती सी जग जाती
वह चाहता
सूँघता रहे सूँघता रहे।

दूसरी लहराती साड़ी वाली
जुड़े में फूल लगाती
लिपस्टिक के रंग वाला
वह चाहता
उसका लाया फूल लगाए
बार बार मुस्काए।

तीसरी जींस टीशर्ट वाली

मुँह घुमाते जब बोलती इंग्लिश
होंठों से जैसे झरते फूल
वह दौड़ दौड़ थामना चाहता
नन्हें हाथों से
कोई फूल धरती पर न गिरे।

चौथी
तितली सी रंग बिरंगी
क्लास रूम उड़ती
बच्चे बच्चे पर बैठती
पुचकारती सूँघती
वह चाहता
बार बार उसी पर बैठे।

पाँचवीं
परी
दादी जी कहानी सुनाती
उस परी सी
कंधों पर पंख
कमर में गरारा
अभी अभी जैसे उड़ने को तैयार
वह चाहता
उसे बगल में दबा
ले जाए ऊँचे पहाड़ पर
परी बादल में नहाए
वह पंख छिपाए।

एकटक देखता रहता है बच्चा
बार बार खिंचता चला जाता
चाहता है
हर मैडम उसे
छाती से भींच कर लगाए रखे
दूर ले जाए
संग घुमाए
शहद चटाए
सुगंध पिलाए
वह बस गुनगुनाता रहे

यस मैडम!
यस मैडम!!
यस मैडम!!!
1991

काले प्लास्टिक में लिपटी देह

देखना चाहता हूँ
किस किस ने छुआ मेरी देह को
किस ने रखा ठण्डे माथे पर हाथ
किस ने हाथ टोहे
किस ने दबाए पैर
किस ने हौले से बंद की आँखें
मृत्यु के बाद
देखना चाहता हूँ।

कौन रोया दहाड़ मार
कौन बस सुबका
कौन खुश हुआ मन ही मन
कौन मुसकाया मंद मंद
देखना चाहता हूँ
मृत्यु के बाद।

कौन छूएगा
मेरी ठण्डी पड़ती देह
कौन घृणा करेगा
कौन डर से कांप जाएगा!

क्या अछूत हो जाएगी देह
कोई नहीं आएगा निकट!
आँखें रहेंगी खुली मेरी सब देखने को।

निर्जीव देह तो माटी है
चाहो जला दो
बहा दो
चाहो फेंक दो जंगल में।

कहने को एकांतवास है
असल में आइसोलेशन पीड़ादायक कैद है।
क्या कोई नहीं आएगा निकट!
नहीं झांकेगा कोई खिड़की से
नहीं फटकेगा कोई
तमाशबीन भी नहीं!
आएँगे बस दूत
प्लास्टिक के चोगे पहने
मनहूस कोरोना वार्ड में।

हो सकता है
कोई न आए लेने
संक्रमित कोरोना देह को
पड़ी रहे काले प्लास्टिक में लिपटी
किसी चौराहे पर
घोषित हो जाए लावारिस
नज़दीक न आएँ
देहदाह के लिए
हेल्थ या कमेटी के कर्मचारी।

अरे! कौन देगा दावत
मृत्यु को!
मरने के बाद भी
जो साक्षात् बैठी है मेरी देह में!

कोई नहीं देगा जगह जलाने को
बंद कर दिए जाएँगे तमाम श्मशान
बहाने भी नहीं दिया जाएगा दरिया में
खाने नहीं दिया जाएगा चील कौओं को
नहीं मिलेगी दो गज़ ज़मीन
दफनाने को।

कुछं भी हो
फर्क नहीं पड़ता किसी को
जिद्द है कि
बस देखना चाहता हूँ।

न जल
न पृथ्वी
न आकाश
न पाताल
फिर कहाँ होंगे पंचतत्व विलीन
कहाँ भटकेगी व्यथित आत्मा!

कौन छूएगा मेरी देह को
मेरी मृत्यु के बाद
देखना चाहता हूँ।
2020

जन्म 1949, पैतृक गाँव अरला पालमपुर, जिला कांगड़ा, हि.प्र.
['अभिनंदन' कृष्ण निवास लोअर पंथाघाटी, जिला शिमला-171009]
मो. 94180 85595

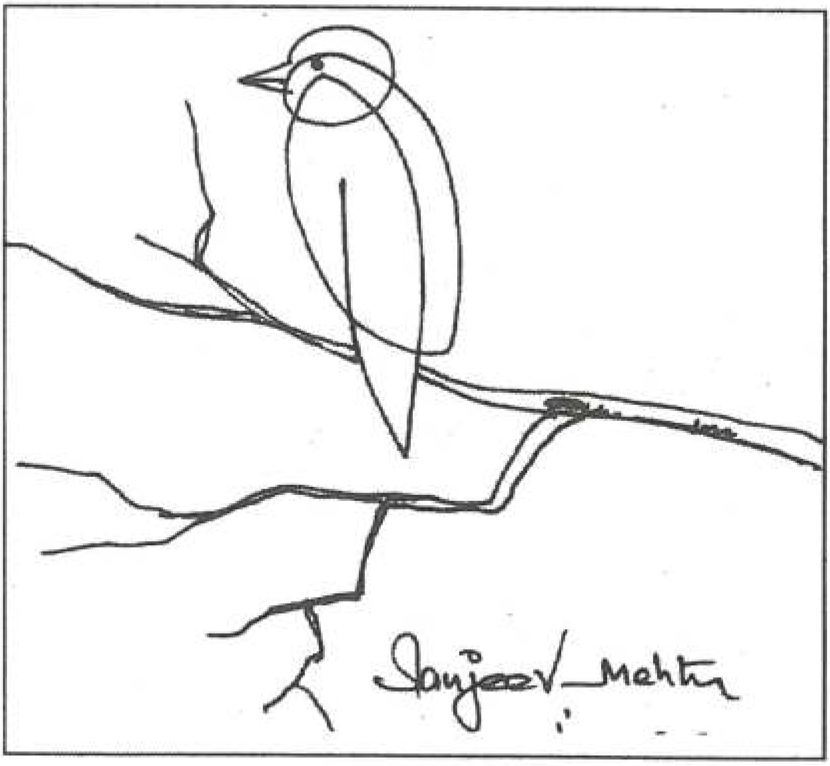

दो कविताएँ

□ के.आर. भारती

माँ जानती थीं

हम भागते थे
तितलियों के पीछे
तितलियाँ कहीं दूर
भाग जाती थीं हमसे
कभी लगता कि हाथ
पहुँच ही गए हैं
उनके पंखों के पास
पर पता ही नहीं चलता
कि कैसे चकमा देकर
उड़ जातीं वे
आते-आते हाथ

माँ ने ऐसा करते
जब हमें देख लिया
वे कुछ न बोलीं
ठीक बरसात से पहले
रोप दी घर की क्यारी में
फूलों की पौध
जो आई बरसात
पौधे आज और कल और
देखते ही देखते
फूट पड़ीं कलियाँ
खिलने लगे फूल
महकने लगी क्यारी
और मंडराने लगीं

रंग बिरंगे फूलों पर
रंग बिरंगी तितलियाँ
हमारे हाथों, कंधों तो कभी
सर पर बरबस
आ बैठती तितलियाँ...
दुनिया की सब से ख़ूबसूरत चीज़
कैसे और कहाँ मिलती है,
माँ के सिवा और कौन जानता है ?
2019

कंधों पर घर

उठाए कंधों पर
बाँस की सोठियाँ
खूंटियाँ कुछ रस्सियाँ
औज़ार कुछ बर्तन असबाब
कुछ मोमजामी चादरें
बिछौने कुछ ओढ़न
चले आए थे जाने
कहाँ से वे सपरिवार
शहर के एक छोर पर
रातों-रात
तन गए उनके तंबू
और देखते ही देखते
बस गई बस्तियाँ
वहीं से लगे
वे काम पर आने जाने
बुनने लगे अपनी
ज़िन्दगी के सब ताने बाने
खुले में वहीं सजे
उनके चूल्हे चौके
वहीं मनें उनके तीज त्योहार

वहीं हुए लफड़े-झगड़े
वहीं लिखी गईं
प्यार मनुहार की कथाएँ
रची गईं वहीं हाथों में हिनाएँ

वहीं बच्चों ने भरी किलकारियाँ
युवाओं ने भरे कुलांचे
और वहीं किसी का
जीवन गया सदा के लिए ठहर
सहसा देखा एक रोज
उखड़ गए थे उनके तंबू
और चल दिए थे जाने
अब किस ओर
उठाए कंधों पर घर
वे यायावर
देख सब मैंने यह जाना
नहीं होते जिनके मकान
उनके भी होते हैं घर।
2013

जन्म 1955, पैतृक गाँव नारा (गलोड़), जिला हमीरपुर, हि.प्र.
[गाँव शरावग, नजदीक केलटी, वाया ए.जी. डाक., ज़िला शिमला, हि.प्र.-171003]
मो. 98166 72455

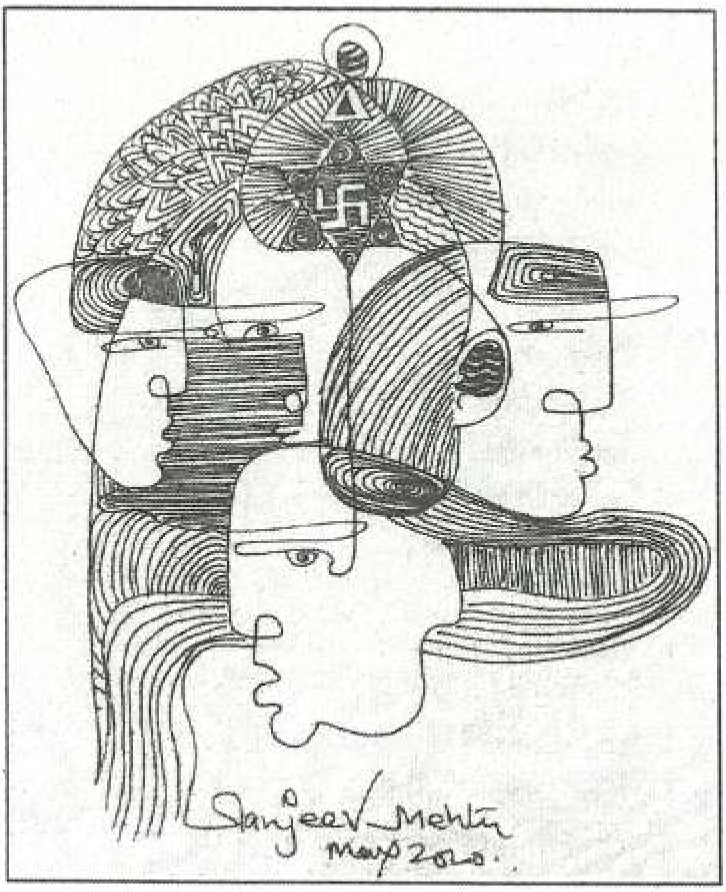

अब की बार

❑ प्रफुल्ल कुमार

अब की बार
हांके, धकेले नहीं जाएँगे
उतारे नहीं जाएँगे हम
गैस चैम्बरों में

अब की बार हम
आतंकित नहीं होंगे
मौत हमारी आँखों में
नाच नहीं रही होगी

अपने-अपने सपनों के साथ
अपनी-अपनी जगह
अपनी-अपनी तरह
जीवित होंगे हम

बच्चे
अलमस्त खेल रहे होंगे
कोई भी खेल
रट रहे होंगे कोई पाठ
कापी लिख रहे होंगे

पत्नी रसोई में होगी
गुनगुनाती हुई कोई गीत
सब के मनपसंद
आलू के परौंठों की तैयारी में
व्यस्त होगी अपनी दिनचर्या के
किसी भी हिस्से में

सैर से लौटे होंगे शायद पिता
थमा रहे होंगे
माँ के हाथों में
मन्सा हलवाई की
मशहूर मोटी दही

मैं हूँगा शायद बालकनी में
सूरज नदी पुल
परिंदे पहाड़ पेड़
मिल जुल कर
रच रहे होंगे दृष्य
अचानक निगल जायेगा पृथ्वी को
एक विशाल गैस चैम्बर

एकाएक धरा रह जाएगा सब
अगली ही साँस पर
अपनी-अपनी जगह
कुछ पल तड़प कर
पत्थरा जाएँगे हम

सिर्फ अफवाह थी
हिटलर मरा नहीं था
साजिशों को आधुनिक
प्रयोगशालाओं में
दुनिया हथियाने की
तैयारी में है हिटलर
हिटलर शरीर नहीं होता
हिटलर मनोविकार
होता है

ज़रूरी, बहुत ज़रूरी है
समय रहते
मानसिक रोगियों का इलाज
1989

पैतृक गाँव मण्डी, हि.प्र.

इंटरनेट पर मेरा गाँव

❑ सत्यनारायण स्नेही

इंटरनेट पर
बच्चे ने जब देखा
अपना गाँव
उसने ढूंढ निकाला
दादा का घर
पर ढूंढ नहीं पाया
अपने दादा को
वो बार-बार खोजता रहा
घर के रास्ते
आँगन में गाय
बगीचे में सेब
चौराहे पर खेलते बच्चे
दादी का चूल्हा
उसमें पकती मक्की की रोटी
देसी राजमाह की दाल
बहुत कोशिश करने पर
उसे दिखती रही
सिर्फ घरों की छतें
नज़र आया
साफ सुथरा पूरा गाँव
निहारता रहा उसको
महीनों लगातार
वह सोचने लगा
नहीं जाना पड़ेगा
अब उस गाँव
जहाँ खानी पड़ती है
कच्चे रास्तों की धूल

गोबर की गंध
जहाँ खुलती है रात
सूर्योदय से पहले
खाने में मिलती है
लस्सी, दाल और

मक्की की रोटी
ज़रूरी हुआ तो
दादा से बतिया लेंगे
कभी फोन पर
जब कभी होगा
गाँव में तीज त्योहार
उसे मना लेंगे यहीं
किसी बड़े होटल में
पीज़ा, बर्गर, कोल्ड ड्रिंक के साथ
और देखेंगे
इंटरनेट पर
अपना साफ सुधरा गाँव
2014

जन्म 1974, धरेच, जिला शिमला, हि.प्र.

['स्नेह सदन' सौंथल, डाक. धारेच, वाया फ़ागू, जिला शिमला, हि.प्र.-171209]

मो. 94180 42938

विपाशा उपहार चित्र

1984 में लाहुल स्पीति के शिपटिंग गाँव में जन्मी कृष्णा टशी पाल्मो टी.वी.सी. ट्रेडिशनल आर्ट स्कूल पतली कूहल, ज़िला कुल्लू, हि.प्र. से प्रशिक्षित (प्रमाणित) थंका चित्रकार हैं। ये पूर्णकालिक स्वतंत्र चित्रकार हैं तथा अपने जीवन साथी स्तान्ज़िन न्येंतग् के साथ मिलकर कंटेम्प्ररी चित्रकला में विभिन्न प्रयोग करती हैं। चित्रकला ही इनकी आजीविका का एकमात्र साधन है।

नदी

❑ अरविन्द रंचन

देखो, नदी है
चाहो तो तैर जाओ
डूबना हो तो मत पूछो गहराई
जितना ऊपर तैरोगे
और गहरा हो जायेगा पानी

और तुम खो बैठोगे
गहरे पानी पैठ
अपनी पहचान

इसलिए कहता हूँ
बाँहें फैला कर तैर जाओ
लेकिन उस पार भी
जंगल हैं

लोग हैं
बस्ती है
और तैर जाने को
भीड़ का समुन्दर

इसलिए कहता हूँ
पानी पर वसीयत लिख
निर्भीक हो तैर जाओ

देखो
टूट रहे हैं किनारे
1993

प्रेम : 'तब' और 'अब'

❑ संगीता कौंडल

तुमने देखा है कभी प्रेम का असली चेहरा...
हाँ! मैंने देखा है...
जब वह एक साल से भी कम उम्र का नवजात
देख रहा था दिवाल पर लगी उस तितली को
और पुलकित हो रहा था मन ही मन
मैंने देखा है उसे प्रेम में पगे हुए उस तितली के साथ...
मैंने देखा है उसी बच्चे को
जब वह माँ के सिवा किसी के स्पर्श को नहीं पहचान पाता था
तो पास खड़े उस पिल्ले से बातें किया करता था
वह नहीं जानता था कि कुत्ते, बिल्ली, साँप, शेर, तितली
और आदमी में कितना अन्तर होता है
वह बस उन सभी में खोजता है तो
अपनत्व, प्रेम और एक प्यारी सी हँसी
ठीक वैसी ही जैसी उसके भीतर है
अभी जो तुम तक पहुँचते पहुँचते हो जाएगी खत्म एक दिन
और जब वह तुम तक पहुँच जाएगा तो
वह अपने कमरे की दीवार चिपकी
उस धूल भरी तितली को बाहर पटकेगा
सामने दिखे कुत्ते को 'दूर' करेगा अथवा लात मारेगा
साँप को किसी तरह से मार डालने को कसक उठेगा
पतीले में रखे उस दूध को
बिल्ली की नज़रों से दूर कहीं छुपाकर रखेगा
क्योंकि अब वह ख़ुद में और
जानवरों में पड़े फ़र्क को समझ जाएगा
वह समझ जाएगा कि वह 'सभ्य जानवर' है और
बाकि सभी असभ्य
लेकिन यह वह कभी नहीं समझ पाएगा कि
आखिर है वह भी जानवर ही
भले सभ्यता का नकली नकाब ओढ़े हुए
अब वह प्रेम सीमाओं में बंध चुका होगा
इसलिए तुम उसे नहीं देख सकते 'अब'
2021

पैतृक गाँव शिवा बदार, जिला मण्डी, हि.प्र.
[शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हि.प्र. विश्वविद्यालय, शिमला-171005]

दो कविताएँ

❑ स्नेह लता नेगी

नहीं जानते आड़ा टेढ़ा चलना

कंधों पर पहाड़ ढोते-ढोते
हम फिसल आए मैदानों में
जैसे नदी उतरती है
ठंडा मीठा पानी लेकर
जीवन को और बेहतर बनाने
कुछ सपने, उम्मीदें
और खून में रवानी लेकर

पर मैदान उनका रहा
जो सदा से मैदानों में रहे
सत्ता की संस्कृति और
इतिहास को उपयोग
कर सकने के ज्ञान में...

हम लौट रहे हैं
हमारे पहाड़ बुला रहे हैं हमको
मैदान की हवा अब
साँस नहीं दुर्गंध हो गई है
यहाँ लोग माँस मच्छी तो दूर
प्याज लहसुन तक नहीं खाते
हाँ मगर मौका मिले तो
खा जाते हैं जिंदा इंसान को
उसकी दिहाड़ी समेत
खूब पसीना बहाकर बचता है जो
चूस जाते हैं
खून की आखिरी बूंद तक...
उस पर भी सीधम-सीध
कुछ न कह कर

शब्दों की जुगाली करते हैं...

हम पहाड़ के लोग
पहाड़ से टेढ़ा उतरना तो जानते हैं
पर नहीं जानते ज़िंदगी में
आड़ा, टेढ़ा चलना
हमारे पहाड़, सेब, खुमानी
और बादाम के पेड़ बुला रहे हैं हमें...

बुला रहे हैं सीढ़ीदार खेत
खिड़कियों से घर में आते-जाते
बादलों के बगूले
बुला रहे हैं चीड़ देवदार
न्योजे और मागल के दरख़्त
बुला रहे हैं पहाड़ हमें
जागते सोते सपनों में
बुला रहे हैं पहाड़ हमें...
2014

बाहर

बाहर, शब्द भर नहीं है
निकाल देना है
शब्द से अर्थ को
मनुष्य से भाषा को
जन को जनपद से
देश से

हम 'बाहर' का अर्थ जीते रहे हैं
भीतर ही भीतर बाहर को
पीते रहे हैं।

जात से, समाज से, देश से
भाषा और विचार से विमर्श से
देश के सवालों से बाहर रखा गया है हमें
बहुत भीतर तक समझते हैं हम
बाहर का अर्थ।
2015

जन्म 1980, पैतृक गाँव कनम, जिला किन्नौर, हि.प्र.
[एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007]
मो. 85860 66430

दो कविताएँ

❑ इशान मार्वल

आपकी सभ्यता

झूठ, चापलूसी, तोल-मोल, दो मिनट की बात एक घंटे में
ये सब तो आप शहरियों की खूबियाँ हैं
और आपसे खूब कोशिश की हम में भरने की
लेकिन
अब भी बचे हैं यहाँ वे जीने के निर्दोष तरीके
जो शब्दों की सत्ता के परे हैं

आपकी सभ्यता ने आखिर क्या ही कर दिया ?
हम बाहर थे, हैं और यही हमारी ताकत
बस ये याद रखना है हमें
नहीं तो खो जाते हैं आप लोगों की चकाचौंध में
और बन जाते हैं आपकी तरह जाली और कमज़ोर

और हाँ आरक्षण भीख नहीं
एक अनचाहा मुआवज़ा था जो कि राजनैतिक हो चुका
हम नहीं आए थे शहरों में कटोरे या तलवारें लेकर
बल्कि आप लोग आए कलम और बारूद समेत
बस अब अपनी पहचान के एवज़ में
ले लेते हैं जो मिलता है
2020

अब किस बात का ट्राइबल?

सब कुछ तो है यहाँ
4जी और सपाट रोड!
देख लो ट्राइबल फण्ड का कमाल

बीच में लोग कितना भी खा जाएँ
काम होने लायक बच ही जाता है

वो देखो नदी पार उस गाँव को
कुछ साठ घर होंगे
कहते हैं हर एक से आई.ए.एस. अफसर निकले हैं
आखिर एक को ही तो निकलना होता है
फिर उसके बच्चे-भतीजे शहरों में
ऊपर से रेज़र्वेशन का ट्रम्प कार्ड
चेन तो बनेगी न!

क्या ही कल्चर?
अब सीजन टाइम में दिखता है बस
जब मंत्री और गोरे टूरिस्ट आते हैं
वरना सब तो है यहाँ
नाइकी, ऐडिडाज़, लीवाइस, ऐप्पल, यूटयूब, जो बोलो
और फिर खाना देखो या गाना
क्या ही ट्रेडिशनल?

आखिर बचा ही कौन यहाँ ?
सब तो शहरों में हैं, नौकरी या पढ़ाई
बचे खाली घरों में गायें और बूढ़े
बाकी खेत बगीचे नेपालियों के भरोसे
2020

जन्म 1989, पैतृक गाँव मार्बल, जिला लाहौल स्पिति, हि.प्र.
[नेगी निवास, निकट राजकीय कॉलेज, ढालपुर, कुल्लू, हि.प्र.-175101]
मो. 89889 92978

दो कविताएँ

❑ दिनेश शर्मा

बीड़ी

तुम्हारी पैदाइश निम्नवर्गीय है
जंगली पत्तों की तुम्हारी खाल
गन्दे हाथों में आकर ही
अपनी शक्ल लेती है

कड़ी धूप में सूखे
तम्बाकू के नशे से
भरा रहता है तुम्हारा पेट
धुएँ में उड़ता है मवाद
जीवन संघर्ष में
गिरती सबसे पहले
तुम्हारे चेहरे की राख

एक चिंगारी से शुरू होता है
तुम्हारा जीवन
आजीवन तुम
शड़ड़-शड़ड़ साँस लेती हुई
बुझती हो

तुम्हारे कुनबे का
टी. बी. से क्या गहरा नाता है
तो तुम्हें चूसता है
उसी के फेफड़ों में क्यों
जम जाती हो
जिसके होंठ चूमती हो

क्या उसी की
हो जाती हो

हर कोई तुम्हें
हर किसी से
हर कहीं
क्यों मांग लेता है
और तुम भी उँगलियों के बीच
ऊँगली की ही तरह
हँसती हुई
क्यों सज जाती हो

झुग्गियों से उठ क्या तुम ने
पॉश कॉलोनियों के ड्रॉइंग रूमों में
सजने के सपने नहीं देखे
अमीर दीवारें क्या तुम्हें घूरती हैं
झूमर तुम्हें देख
आँख मीचते हैं

मज़दूर के पसीने और
किसान की हाँक के बीच
बगल की जेब या पगड़ी की सिलवटों से
बिन बुलाए क्यों आती हो
अँधेरी रातों की बेचैनियों में सुलगती
आत्महत्याओं के राज उगलने से पहले
मंजे के पाये से मुँह लगाकर
आधे जीवन ही क्यों
दम तोड़ती हो

समाज की सीलन तुम्हें
धीरे धीरे गलाती है
लोगों की जेब में
पड़ी-पड़ी ही टूट जाती हो
तुम्हारी अनबुझी इच्छाएँ
बस्तियों में आग लगाती हैं

क्या तुमने सुना नहीं

दुनिया भर की बीड़ियाँ
क्रांति की चिंगारियाँ मिलाकर
फूँक सकती हैं
सारी ग़ैर-बराबरी।
2016

बिशू-रेहली में गई औरतें

उनके साथ दी धेण ही नहीं
गयी थी माताएँ थी
रेहण हुमक रहीं थी सबसे आगे
बच्चियों का टोला
कूद रहा था बीचोंबीच
उम्र सबकी थी अलग, उल्लास था एक

वे गयी थी कि
झुलेंगी झूला आसमान को चूमता हुआ
जीभ पर रखेंगी जलेबी चाशनी में डूबी हुई
खेल तमाशे देखेंगी
गीत गंगी गाएँगी
बसन्ती रंग के, फुरकू वाले, छींट के
धाटू पहनेंगी
सदरी सजाएँगी मखमल की
आँख में सुरमा और होंठों पर लाली लगाएँगी

जुबड़ी की जूब पर
नगाड़े के टाम्बे के साथ
थिरके थे उनके भी कदम
शहनाई गूँजी थी भीतर
नवजात की किलकारी की तरह
करनाल-हरसिंगे की गरज में
आसमान की ओर फूंके थे उन्होंने
अपने सब दुःख
गाई थी सुख की नरम घास की रेहली

क्या ये वही औरतें हैं
जो गई थीं

घूण्ड के बिशू, देवठी की रेहली, महासू की जात
बलग की एकादश, ठेवग की आज़ादी में
छाती से चिपककर जिनके सिसक रहे हैं बच्चे
गोबर के किलटे के नीचे
पहाड़ चढ़ रही है जिनकी पीठ
कपड़े धोने को हो गए हैं कहती हुई
गाय की बगल में बिछौना डाल
लेट गयी हैं जो भींचकर होंठ
जो सबसे पहले उठने वाली
आखिर में खाने वाली हैं
बदहवास लौटते हैं जिनके मर्द
गाली गलौज की दुर्गंध के साथ
जिनके जिस्म की टोह में रहते हैं
दांधी के जंगलों के अडिगल
अभी अभी खबर आई है
घासनी में पाँव फिसलकर
घास के पुले की तरह
लुढ़क जाने की
जिनमें से किसी एक की

नहीं! नहीं!
ये वही औरतें नहीं हो सकतीं
या तो वे मेले में गयी ही नहीं
या फिर लौटी ही नहीं।
2022

जन्म 1979, पैतृक गाँव नमाणा, ज़िला शिमला, हि.प्र.
[एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, चौड़ा मैदान, शिमला-171004]
मो. 94184 78084

दो कविताएँ

❑ विवेक भारद्वाज

ये लोग

ये कच्ची-पक्की सड़क
सरकारी दस्तावेज़ों में पक्की-पक्की सड़क है
ये टीन का झोंपड़ा
प्राईमरी स्कूल है
और ये धूल भरा बागडा
खेल का मैदान
वो जो कब्रिस्तान सा दिखता है
वो पटवार खाना है
टूटी मेज़ के पीछे ज़रा ज़रा-सी आँखों वाला सियार
सियार ही है
वो ज़मीन नापने वाली ज़ंग लगी ज़रेब
वो सियार की पूँछ है

वो पीला ट्रक
कुबेर रथ है
जिस पर झूलकर होता है लंका का निर्माण
वो लाल बत्ती तले बैठा
खादी का पुतला
भ्रष्टाचार का उपसर्ग है

और धूल भरी सड़क पर
टूटे छप्पर तले पढ़ कर
सियारों से लड़ कर
जा रहा है
वो विधाता है

भारत का भाग्य विधाता।
2021

सिगरेट पीती औरत

वह औरत
सिगरेट पी रही है
लोग उसे घूर रहे हैं
जैसे वो चूस रही हो उनकी सभ्यता का लहू

सब नाक मुँह सिकोड़ रहे हैं
जैसे तम्बाकू पहली बार जला हो उनकी प्राण वायु में
सब दूर खड़े हैं
मगर इतने पास
कि देख पा रहे हैं उँगलियों का हिलना
राख का झड़ना

मैं सोच रहा हूँ
क्यों ट्रक के पीछे जाकर नहीं पी लेती
मगर क्यों
औरत को हर काम परदे में ही करना होगा
पीती है तो पी रही है
उसका एक ही चेहरा है
नक़ाब फैंक दिया है उसने

उसने नर्मी से सिगरेट का टुकड़ा बुझाया
और सहेज लिया एक डिबिया में
जैसे वो रख रही हो हिसाब
बदचलन कहलाए जाने का
अपने द्वारा दुनिया जलाए जाने का।
2021

जन्म 1982, पैतृक गाँव ऊँचा टिक्कर, जिला सिरमौर, हि.प्र.
[गाँव ऊँचा टिक्कर, डाक. बड़ग, तह. संगड़ाह (रेणुका जी), जिला सिरमौर, हि.प्र.]
मो. 98166 68025

दो कविताएँ

❑ शेर सिंह मेरूमा

तांदी संगम पर स्मार्ट श्मशानघाट

एक अच्छा श्मशान
श्मशान जैसा ही होना चाहिए
कुछ हरियाली हो कुछ फूल हों
और थोड़ी-सी शांति चाहिए
आखिर सोने का शंख बजाने से होगा क्या
मुर्दा फिर से जिंदा?
जंगलात के डिपू पर लकड़ी आसानी से मिले
ठेले काटने को कुल्हाड़ी तेज़ चाहिए
चिता को बारिश और बर्फ़ से बचने को
एक छत चाहिए

श्मशान को मेकअप बॉक्स देने से क्या?
उसका थोड़ी करना है ब्याह?
2016

ठाठरी

ठाठरी आ रहा है थनवानी झूले में
घास के पूले में
चढ़ते-चढ़ते चढ़ाई में
बच्चे आगे बढ़े
पढ़ते-पढ़ते पढ़ाई में
आते जाते लोगों को चाय पूछना धर्म है
थनवानी इस दुनिया का कितना सुनसान कोना है
अगली दफा मेहमान और सामान गाड़ी से ढोना है
थोड़ा आगे पेड़ों के बीच में दो तीन घर हैं

जंगल में जंगली जानवरों का भी डर है
डर में भी पसीना पड़ता है गला सबका सूखता है
गले में मोती की माला रहे या न रहे
'मोती नाले' का चश्मा नहीं सूखना चाहिए
अब निकासी पहुँच गया है
अब बोझ नीचे रखते हैं
पास के घरों में जाके थोड़ा शहद चखते हैं
जो रिश्ता नाता है
मुश्किल वक्त में वही काम आता है
थोड़ा-सा आगे अखरोट के बड़े पेड़ के पास
मेरा पैर फिसलने वाला है
हड्डी टूट गयी तो मानचंद के पास जाऊँगा
लेकिन खून निकल गया तो पट्टी कराने कहाँ जाऊँ
हेल्थ सेंटर में तो ताला लगा है
उदयपुर के लिए गाड़ी करनी थी
लेकिन समस्या यह है
कि अभी यहाँ जेसीबी ने बर्फ़ नहीं हटाया
2022

जन्म 1986, पैतृक गांव : बिलिंग, जिला लाहुल-स्पिति, हि.प्र.

[गाँव बिलिंग, डाक. केलंग, जिला लाहौल स्पिति, हि.प्र.-175132]

मो. 94597 81845

दो कविताएँ

❑ मुकेश कुमार

उन्हें सब कुछ मालूम था

चकमक पत्थरों को घिसने से आग ईजाद होते देखी है
घर के छज्जे में बनते घोंसले भी देखे थे
जैव विविधता के सिद्धान्त बिना पढ़े ही जान गए थे वे
शून्य की खोज किसी सिद्धान्त से नहीं हुई थी उस समय
फिर भी आर्यभट्ट को पागल करार दिया होगा कुछ लोगों ने

पत्थरों के वे हथियार और बहुत से औज़ार
जो पुरातत्वविदों को अनुसंधान में मिलते रहे हैं
मनुष्य होने के साक्षात् सबूत हैं
कई भाषा और लिपियों के ज्ञाता भी थे वे
जो उन्हीं के साथ लुप्त हो गई अलिखित इतिहास बनकर

दरअसल वे कई चेहरों के जानकार हैं
कई आविष्कार स्वतः ही हुए हैं उनसे
बहुत सारी बातें और ढेरों स्मृतियाँ
कई अनुभव और किस्से कहानियाँ बचे हुए हैं उनके पास
अभी भी बचाकर रखते हैं वे उपलों में आग
आने वाले कल के लिए

स्मृतियाँ भी एक सुरक्षित जगह है
जहाँ हम इतिहास की कई सूचनाओं को जान सकते हैं

वे उस भौगोलिक क्षेत्र के निवासी रहे हैं
जहाँ इन्द्रधनुष के रंगों पर किसी का एकाधिकार न हो
उनके कंधों पर नये शहर बनाने का ज़िम्मा नहीं था

इसलिए उनके हाथ खून से नहीं सने हैं

जिन्हें आज भी भाषा में 'बूढ़े लोग' कहते हैं
उन्हें सच में ही सब कुछ मालूम था
लेकिन हमारा ऐसा मानना
कि उन 'बूढ़े लोगों' के पास कुछ भी नहीं बचा है
बिलकुल मिथ्या है।
2022

मैं गीता पढ़ रहा हूँ

मैं बहुत बड़े टेबल पर रखना चाहता हूँ
आसमान का कटा सिर
और पहाड़ों की बियाबान खाइयों में दफनाना चाहता हूँ
उसकी टाँगें!
आँखों को निकालकर रख दूँगा सूरज के एकदम करीब
नाखून को रख आऊँगा मैं शिवालिक की पहाड़ियों पर
और फर्श पर फैले खून को साफ करने के लिए
पूर्णिमा के दिन लगाऊँगा पोछा

मैंने आसमान की हत्या कर दी है और
खुद गीता पढ़ रहा हूँ!
2022

जन्म 1997, पैतृक गाँव कड़ियाना, जिला सिरमौर, हि.प्र.
[गाँव कड़ियाना, डाक. लाना पालर, तह. संगड़ाह, जिला सिरमौर, हि.प्र.-173023]
मो. 85807 15221

ताकल़

❑ कमल चंद

काठ से तराशी
छोटी सी
हाथों में घूमती खिलौनों सी
यह नन्हीं लकड़ी
ऊन को धागे में बदलती
दादी की अनुभवी उँगलियों में
घूमती निरंतर
लगती बड़ी नटखट सी
यूँ ही झूमती रहती
सोचता हूँ
मुससे कुछ तो यह बतियाती
घुमाव में
अपने संघर्ष की
ज़रा सी झलक तो दिखलाती
फिर क्यों...
वह लकड़ी आज
हमारे हाथों से फिसलती जाती
अब क्यों
वह ताकल़
आज
संग्रहालय में नज़र आती?
2020

जन्म 2002, पैतृक गाँव शाहिटा, जिला कुल्लू, हि.प्र.

[गांव शाहिटा, डाक. कसलादी, तह. जरी, जिला कुल्लू, हि.प्र.]

मो. 78078 74535

दो कविताएँ

❑ बबलू ठाकुर

ज़िन्दगी

मेरा एक मित्र
बोल रहा था
वो इलेक्ट्रिक बोर्ड में काम करता है।
एक दोस्त शादी कर रहा है
एक टैक्सी चला रहा है
एक एप्पल का बगीचा लगाने में
दिन रात एक कर रहा है
कोई घर बना रहा है
कोई दुकान
कोई यू ट्यूब
तो कोई अपनी जान दे रहा है
कोई तलाक दे रहा है
तो कोई किसी का घर तोड़ रहा है
कोई गरीबी से बड़ी ऊँचाई पर पहुँच गया है
तो कोई उसी ऊँचाई से गिर रहा है
पर कोई भी खुश नहीं है
खुद से पूछता हूँ मैं
यही जिंदगी है क्या?
जो मैं जीता हूँ और
देख रहा हूँ!
सोचता हूँ
सोचता हूँ!
2022

सोच

मैं थक गया हूँ
कल क्या होगा यह सोच कर

हर पल सोचता हूँ
ये सोच कर
वो क्या सोचता है
यह सोच कर।

मैं थक गया हूँ
सोच-सोच कर
वो कहाँ पहुंच गए
हम वहीं रह गए
उनकी ख़ुशी मेरी उदासी
ज़िंदगी हो गयी क्या न जैसी
थक गया मैं यह सोच कर
अपनों ने ही गम दिया
ये सोच कर
गैरों से तो न थी उम्मीद
मगर साथ वोही छोड़ गए जिनसे थी उम्मीद!
थक गया हूँ सोच-सोच कर...
अब हमारी सोच ने सोचा है
नहीं सोचेंगे सोच-सोचकर...
क्योंकि
ज़िन्दगी में ख़ुशी नहीं मिलती
सोच-सोच कर...
2022

जन्म 1994, पैतृक गाँव शरन, जिला कुल्लू, हि.प्र.
[गाँव शरन, डाक. नग्गर, तह. व जिला कुल्लू, हि.प्र.]
मो. 86269 22540

राजकीय मुद्रणालय, हि०प्र०--670-डी.एल.सी./2022-27-7-2022--1200 पुस्तकें।

VIPASHA-214-215 April-August, 2022 PRICE : ₹30/-

पहाड़ी पुरुष-अमृता शेरगिल श्रीमती इन्दिरा सुंदरम के संग्रह में

पंजीयक-समाचार पत्र, भारत सरकार द्वारा पंजीकृत संख्या : 42497/85

निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि.प्र., शिमला-171009 द्वारा प्रकाशित तथा नियन्त्रक, मुद्रण एवं लेखन सामग्री विभाग, शिमला-5 द्वारा मुद्रित। मुख्य संपादक : डॉ. पंकज ललित